बाबा दौलतराम वर्णी की सोलह रचनाएँ

प्रबन्ध सम्पादक

सुरेश जैन (आई.ए.एस.)

एम.कॉम., एल.एल.बी.

सम्पादक

डॉ. प्रमोद जैन

आचार्य (साहित्य), आचार्य (प्राकृत, अपभ्रंश एवं जैनागम),

एम.ए. (संस्कृत), एम.बी.ए., पी.एच.डी.

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली

अंतर्ध्वनि

–प्रो. फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी'
राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित
अनेकांत विद्या भवन,
बी 23/45–पी–6,
शारदा नगर कॉलौनी,
खोजवाँ, वाराणसी–221010
Email - anekantjf@gmail.com
(M) 94501 79254

जैन धर्म–दर्शन और संस्कृति रूप श्रमणधारा भारत में आदिकाल से ही समृद्ध रूप से प्रवाहित होती हुई चली आ रही है। कभी निर्ग्रन्थ, कभी अर्हत् तो कभी व्रात्य एवं श्रमण जैसे नामों से सम्पूर्ण जन–मानस को लोक–मंगल और आत्म वैभव की भावना से सदा ओतप्रोत करती रही है। इसने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैसे नैतिक मूल्यों तथा अनेकांतवाद–स्याद्वाद एवं सर्वोदय जैसे परस्पर सद्भावना युक्त सिद्धांतों द्वारा भारत की विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं साहित्यिक परंपराओं को गहराई से मात्र प्रभावित ही नहीं किया, अपितु इसने सच्चे अर्थों में विश्व गुरु के रूप में अपने देश की पहचान को भी दृढ़ बनाया है।

सम्पूर्ण देश के कोने–कोने में स्थित जैन संस्कृति के प्राणभूत पावन सिद्धभूमियाँ, महान तीर्थक्षेत्र और भव्य मंदिर मात्र साधना एवं उपासना के केन्द्र ही नहीं हैं, अपितु प्राचीन काल से महान शिक्षा के केन्द्र भी रहे हैं। जब देश में गुरुकुल एवं विद्यालय जैसे शिक्षालय बहुत कम अथवा दुर्लभ थे, तब भी जैन

समाज इन्हीं तीर्थों और मंदिरों आदि के माध्यम से शिक्षित होकर सर्वाधिक साक्षर होने का गौरव प्राप्त करती रही है। यही कारण है कि साहित्य और विद्याओं की सभी विधाओं में प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी के साथ-साथ दक्षिण भारतीय एवं प्रादेशिक तथा लोक भाषाओं में विपुल साहित्य सृजन कर श्रमण परंपरा ने भारतीय वाङ्मय को विशालता प्रदान कर अद्वितीय योगदान किया है। प्राचीन काल से आज तक विकास और योगदान का क्रम निरंतर जारी है। जिस प्रकार देश के पुरातात्विक महत्त्व के अथवा प्राचीन क्षेत्रों में जब भी किसी भी निमित्त उत्खनन किया जाता है, तब प्राय: जैन मूर्तियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार देश के हस्तलिखित शास्त्र भण्डारों में प्राय: कोई न कोई महत्वपूर्ण प्राचीन दुर्लभ शास्त्र भी मिल जाता है। इसी तरह अब से लगभग एक दशक पूर्व तक अज्ञातप्राय उन्नीसवीं सदी के अंत और बीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों के महान साहित्य सर्जक पूज्य बाबा दौलतराम जी वर्णी के साहित्यिक अवदान को यहाँ रेखांकित किया जा रहा है।

जिस सिद्धभूमि नैनागिरि में तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने अपनी दिव्य देशना द्वारा अनेक भव्य जीवों के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया, साथ ही यहीं से पूज्य वरदत्तादि पंच ऋषिराजों ने निर्वाण प्राप्त किया, उस पुण्यधरा से अनेक भव्यात्माओं ने अपने जीवन को धन्य किया है। अनेक आचार्य और साधु भगवंतो ने यहाँ प्रवास कर अपनी उच्च संयम एवं साहित्य साधना की ऊँचाईयों को भी छुआ है। बीसवीं सदी में पूज्य गणेश प्रसाद जी वर्णी और बाबा दौलतराम जी वर्णी को नैसर्गिक प्राकृतिक छटा से युक्त यह पवित्र सिद्धक्षेत्र अतिप्रिय रहा है। वहीं आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने यहाँ ससंघ कई चातुर्मास तो संपन्न किए ही, अनेक दीक्षाएँ प्रदान की और काफी महत्वपूर्ण साहित्य सृजन भी यहाँ से किया। उसी समय यहीं उनके द्वारा सृजित मूकमाटी, कई संस्कृत शतकों और अन्यान्य रचनाओं के कई छंदो को उनके ही श्रीमुख से प्रत्यक्ष सुनने का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त रहा है।

बाबा दौलतराम जी वर्णी ने आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती द्वारा एक हजार वर्ष पूर्व शौरसेनी प्राकृत भाषा में रचित करणानुयोग के महान आगम ग्रन्थ गोम्मटसार जीवकाण्ड पर पुरानी हिन्दी में 'छंदोदय' नामक वृत्ति ग्रन्थ का सृजन इसी पवित्र तीर्थ पर रहकर किया। एक दशक पूर्व तक यह पद्यमय अदभुत वृत्ति ग्रन्थ हस्तलिखित शास्त्र भण्डार में अपने उद्धार की प्रतीक्षा में अनजान सा विराजमान था। मात्र जुझारू व्यक्तित्व के धनी विद्वद्वर्य पं. हीरालाल जी सिद्धांतशास्त्री ने इसकी महत्ता समझते हुए जनवरी, 1971 के सन्मति संदेश के अंक में इस छन्दोदय वृत्ति ग्रन्थ का परिचयात्मक लेख प्रकाशित किया था। पर उस समय किसी ने इसे संज्ञान में नहीं लिया, किन्तु काललब्धि मिलने पर किसी भी मूल्यवान वस्तु का पारखी मिल ही जाता है।

नैनागिरि जैसे पवित्र सिद्धक्षेत्र को अपनी जन्मभूमि होने का जिन्हें महान गौरव है ऐसे यशस्वी व्यक्तित्व के धनी श्री सुरेश जी जैन, आई.ए.एस., भोपाल को जब यह ज्ञात हुआ कि छन्दोदय जैसे महान ग्रन्थ की रचना बाबा दौलतराम जी ने इसी सिद्धभूमि पर रहकर की है, तब इसके प्रकाशन के पवित्र कार्य का उपक्रम आपने अपना कर्त्तव्य मानकर किया और उत्साही युवा विद्वान डॉ. प्रमोद जैन, जयपुर के संपादकत्व में भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली जैसी गौरवशाली प्रकाशन संस्था से वर्ष 2018 में इसे प्रकाशित कराया। जब आपको ज्ञात हुआ कि इन्हीं बाबा जी की अन्यान्य स्फुट रचनाएँ ब्र. संदीप 'सरल' जी द्वारा संस्थापित अनेकांत ज्ञान मंदिर, बीना जिला, सागर, म.प्र. के शास्त्र भण्डार में हैं तब इनका संपादन पूर्वक प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ से ही कराने का आपने संकल्प लिया और आपका संकल्प सदा सफलता तक पहुँचाता है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन ही आपकी इसी संकल्पसिद्धि का सुफल है।

बाबा दौलतराम जी वर्णी इसी बुंदेलखण्ड की महान विभूति थे। पूज्य गणेश प्रसाद जी और आपका मधुर साहचर्य रहा है, जिसका उल्लेख *मेरी जीवन गाथा* में हुआ है। मेरे पूज्य नाना जी स्व. थम्मनलाल जी जैन चौधरी, नैनागिरि के सरकारी स्कूल में स्वतंत्रता से पूर्व हेड मास्टर कई वर्ष तक रहे। श्री सुरेश जी के पिताजी श्री सतीशचन्द्र जी से जब भी चर्चा होती थी, वे अक्सर मुझसे कहते थे कि आपके नानाजी ने मुझे पढ़ाया है। तब निश्चित ही इन पूज्य वर्णीद्वय के सानिध्य का लाभ मेरे पूज्य नाना जी को भी प्राप्त रहा होगा। दलपतपुर जिला सागर में मेरे पूज्य पिता श्री सिंघई नेमिचन्द्र जी बैसाखिया को पूज्य वर्णी द्वय की यथोचित वैयावृत्ति का अनेक बार सौभाग्य प्राप्त रहा है। ऐसा मैंने उनके मुख से कई बार सुना है, क्योंकि नैनागिरि आते-जाते एक-दो दिन दलपतपुर में जरूर प्रवास करते थे। मंदिर के सामने ही हमारा आवास होने से यह लाभ मेरे पूज्य पिता जी और मेरी माताजी श्रीमती उद्योतीदेवी जैन आदि परिजनों को सहज प्राप्त होता रहा।

बाबा दौलतराम जी वर्णी श्रेष्ठ कवि एवं लेखक तो थे ही, महान तपस्वी भी थे। वे ग्रहण किये हुए सभी श्रावक व्रतों का कड़ाई से पालन करते थे। उन्होंने जो व्रत ग्रहण किये थे, उनका विवरण इसी ग्रन्थ में संगृहीत *व्रत-नियम पोथी* शीर्षक से 37 छंदों में दिया गया है। व्रत धारण का उद्देश्य और निरतिचार उनके पालन की मंगल भावना उन्होंने अंतिम दोहे में इस प्रकार व्यक्त की है-

अन्य चाह कछु नाहिं मम, व्रत अदोष त्री पाल।
अंतमरण सल्लेखना, हूजो हे जगपाल।।33।।
अवधी पति जीवन व्रती, महत वचन मद टार।

नियम अधिक कम देख मम, करौ न स्वचित विचार।।34।।

पूरणकृत कछु नियम मम, कछु पदार्थ रुग गात।

जनक जानकिय त्याग कछु, करन करण मद घात।।35।।

इस प्रकार अच्छे तपस्वी, व्रती श्रावक के रूप में पूज्य बाबा जी का समाधिमरण सन् 1907 के आसपास इसी सिद्धक्षेत्र में हुआ। आपने सन् 1902 में इसी पवित्र तीर्थ को शिक्षा तीर्थ बनाने के उद्देश्य से बाबा दौलतराम वर्णी पाठशाला की भी स्थापना की थी।

आपके छन्दोदय ग्रन्थ और प्रस्तुत स्फुट रचनाओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि आप एक श्रेष्ठ सहृदय कवि तो थे ही साथ ही आप जैन सिद्धांत शास्त्रों के गहन अध्येता भी थे। बड़े से बड़े और गूढ़ सिद्धांतों को भी सरल-सहज शब्दों में समझा देने और पाठक को हृदयंगम करा देने की अपूर्व क्षमता आप में विद्यमान थी। आपकी मान्यता थी कि पद्य विधा द्वारा जितना जनमानस के हृदय को प्रभावित किया जा सकता है, वैसा अन्य विधा द्वारा दुर्लभ है।

इस पुस्तक में संगृहीत बाबा जी की स्फुट रचनाएँ अधिकतर पूजाओं तथा अन्य लोकप्रिय विषयों से संबद्ध हैं किन्तु इनमें पंच-परमेष्ठी के प्रति जो अनन्य श्रद्धा-भक्ति और समर्पण के जो सहज-सरल भाव हैं, उनकी अभिव्यक्ति रूप भावों को जिन विविध छंदो में निबद्ध किया गया है, वे उनकी अनुपम काव्य प्रतिभा के द्योतक हैं। देव-शास्त्र-गुरु पूजन की स्थापना करते हुए उनके भाव इस प्रकार हैं -

चतु घति जित जिन कथित जिन, श्रुत युत स्यात्पद चिन्न।

निरख-परख गुरु पद जजौं, उपधि द्वंद्व कर भिन्न।।

इस पद्य में कुछ जैन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। अष्ट कर्मों में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय - ये चार घातिया कर्म कहलाते हैं। इनको जीतने वाले जिनेन्द्र अर्थात अरिहंत देव, इनके द्वारा कथित स्यात् पद अर्थात स्याद्वादमयी वाणी से चिह्नित जिन श्रुत अर्थात जैन आगम रूप शास्त्र, तथा जिन्होंने समस्त उपधि अर्थात परिग्रह के द्वंद्व को नष्ट कर दिया है ऐसे गुरु के चरणों में नमन है।

इस प्रकार कवि ने एक ही छंद द्वारा देव, शास्त्र और गुरू की विशेषताओं/योग्यताओं को पूजा के माध्यम से नमन किया है। इसी पूजा में वे दीप समर्पित करते हुए मंगल कामना करते हैं कि मिथ्यात्व रूपी अंधकार घर-घर में छाया हुआ है, जो कि स्व पर का विवेक हरण कर रहा है, अत: इसकी समाप्ति हेतु यह

पवित्र अमूल्य दीपक समर्पित करने इसलिए आया हूँ, ताकि इस मिथ्यात्व अंधकार का क्षय हो। इन्हीं भावों को उनके इस पद्य में देखा जा सकता है-

मिथ्या तम घट-घट छाय, स्व पर विवेक हर्यौ।
तसु नाश करन शुचि ल्याय, दीप अमौल्य खर्यौ।।

बाबा जी अच्छे कवि हैं। उनकी कविता में जहाँ भावों की सहज अभिव्यक्ति है, वहीं शब्द-संयोजना, अर्थ-गांभीर्य और उनमें पूर्ण श्रद्धायुक्त समर्पण के भाव देखते ही बनते हैं। देव-शास्त्र-गुरु पूजन की जयमाला के अन्त्य आशीष वचनों में वे कहते हैं-

अरिहंत जिनेशं अमित गुणेशं, रचित गणेशं शास्त्र वरं।
वर सूरि पदीशं पाठक ईशं, मुनि पद शीशं दौल धरं।।

इस दोहा में गणेशं शब्द का अर्थ गणधर देव है। यहाँ दौल शब्द के माध्यम से कवि ने अपने नाम को संकेत रूप में प्रयुक्त किया है। इसी प्रकार कवि कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालय की पूजन की स्थापना और जयमाला के शुभारंभ में क्रमशः इन दो दोहों में बहुत ही अच्छा भाव गाम्भीर्य प्रकट करते हैं-

या जग मंदिर में लसैं, जे जिन मंदिर सार।
कृतमाकृतम चितार ते, जजहुँ, त्रियोग सम्हार।।
मिथ्यातम दम रवि सहज, सुदृगोत्पत्ति उपाय।
जिनागार युत चैत सब, कहुँ तिन आरति गाय।।

यहाँ द्वितीय दोहे की प्रथम पंक्ति का भाव है - सम्यग्दर्शन रूपी सूर्योदय की उत्पत्ति का सहज उपाय है - मिथ्यात्व रूप अंधकार का दमन।

कविवर बाबा जी ने शांतिनाथ पूजन में जल समर्पण करने के लिए वसंततिलका छंद में जो पद्य प्रस्तुत किया है, उसमें जिस प्रकार भाषा शैली और शब्द योजना से उसे सजाया है, उससे उनका संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं पर पूरा अधिकार ज्ञात होता है क्योंकि इस छंद को यदि थोड़ा परिवर्तित कर दिया जाय जाय तो यह सरल संस्कृत भाषा का छंद बन सकता है, यह छंद इस प्रकार है -

क्षीराब्धि नीर शुचि पीर तृषा निवारी, लै कुंभ हेम भर धार त्रिभूमि धारी।
तीर्थेश चक्र मकरेश पदी त्रिधारी, अर्चैं पदाब्ज जिन शांति जगत्रि तारी।।

इसी प्रकार पावापुर क्षेत्र संबंधी श्री वीर नाथ स्वामी पूजन का वह कुसुमलता नामक अंतिम छंद भी बड़ा ही महत्वपूर्ण है, जिसमें कवि ने बड़ी ही कुशलता के साथ अपने नाम की संयोजना की है –

धन धान्यादि शर्म इंद्रीलह, सो शिव शर्म अतेन्द्री पाय।
अजर अमर अविनाशी शिव थल, 'वर्णी दौल' रहे शिव थाय।।

सिद्धक्षेत्र नैनागिरि का प्राचीन नाम रेशिंदिगिरि भी है। यह पवित्र तीर्थ प्राकृतिक छटा से भरपूर तो है ही, यहाँ आने वाले सभी भक्त जब दूर से ही इस तीर्थ को निहारते हुए पर्वत पर और तलहटी में स्थित अनेक पंक्तिबद्ध रूप में शोभायमान उत्तुंग भव्य जिनालयों के शिखरों और उन पर लहराती ध्वज-पताकाओं को देखते हैं, तब प्रसन्न मुखमण्डल युक्त आल्हादित मन से पार्श्व प्रभु और इस पवित्र तीर्थ का जयकारा करते हैं, जिससे सम्पूर्ण प्रकृति गुंजायमान हो जाती है।

वंदना करते समय जब पर्वत के प्रारंभ में भक्त यहाँ के बड़े बाबा पार्श्व प्रभु के विशाल जिन मंदिर में प्रवेश कर अतिशय और मनोहारी कायोत्सर्ग मुद्रायुक्त भगवान की छवि निहारता है तो इतना आत्मलीन होकर अपने को विस्मृत सा अनुभव करता हुआ एक अनुपम आनंद में डूब जाता है और वह कह उठता है-

धन्य हुई ये पलकें, जिनने ये पल अपलक निहारे,
नहीं गगन में तारे इतने, जितने इनने तारे।
एक बार जो करे वंदना, निशदिन हराभरा है,
नैनागिरि ही पार्श्वनाथ की, ऐसी पुण्य धरा है।।

मुझे अभी तक अच्छी तरह स्मरण है जब मेरी उम्र मात्र 4-5 वर्ष की थी, उस समय संभवतः सन् 1953 में पार्श्वनाथ भगवान की इसी भव्य मूर्ति और विशाल मंदिर का पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का बहुत बड़े स्तर पर आयोजन हुआ था। अपने माता-पिता और संपूर्ण परिजन के साथ अपनी जन्मभूमि दलपतपुर से बैलगाड़ी में बैठकर इस मेले में जाते समय जब जंगल के रास्ते से गुजरते हुए हम सभी बच्चे 'नैनागिरि को जाएंगे, बेर मकोरा खाएँगे' यह गुनगुनाते हुए जा रहे थे। यहाँ पहुँचकर हमने अपनी बालमण्डली के साथ खेलते कूदते पंचकल्याणक प्रतिष्ठा पूजन के कुछ कार्यक्रम देखकर अपने को सौभाग्यशाली माना।

आज भी जब कभी हम इस तीर्थ की वंदना के लिए आते हैं तब इसी मंदिर में दर्शन पूजन करके आगे के सभी मंदिरों के साथ ही सरोवर में स्थित विशाल जल मंदिर की वंदना भक्तिभाव पूर्वक करते हैं।

दूर से ही हम देखते हैं कि कमलों से युक्त वृहद सरोवर और इसके मध्य भव्य जिनालय से शोभायमान यह ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानों पर्वतमालाओं की हरीतिमा के मध्य स्वर्ग से कोई सुसज्जित शुभ्र विमान उतरा हो।

इस पुस्तक में बाबाजी द्वारा रचित सिद्धक्षेत्र नैनागिरि की बहुत ही सरल भाषा में पूजन भी संकलित है। इसमें इस तीर्थ क्षेत्र की महिमा का भी वर्णन है। इस क्षेत्र की पूजन स्थापना के दोहे में श्रद्धा से कह उठते हैं –

पावन परम सुहावनौ, गिरि रेशिंदी अनूप।
जजहुँ मोद उरधार अति, कर त्रिकरण शुचि रूप।।

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि इस सिद्धक्षेत्र में तीर्थंकर पाश्र्वनाथ का समवसरण आया और यहीं से उनकी दिव्यध्वनि खिरी, जिससे अनंत जीवों का कल्याण हुआ। समवसरण शुभागमन की स्मृति में ही इस पर्वत के आरंभ में बड़े भव्य जिनालय एवं सरोवर के तट पर समवसरण मंदिर का निर्माण हुआ। बाबा जी ने यहाँ समवसरण के शुभागमन का उल्लेख इस पूजन की जयमाला में इस प्रकार किया है –

सो समवसरण कमला समेत, विहरत विहरत पुर नाम खेत।
सुर नर मुनि गण सेवत कृपाल, आये भवि हितु तिहिं अचल माल।।

शास्त्रों में समवसरण के जितने क्षेत्र के विस्तार का उल्लेख है, तदनुसार आसपास के अनेक गाँव उसमें समाहित होकर पवित्र हुए। मेरी जन्मभूमि दलपतपुर इसी पवित्र तीर्थ का निकटवर्ती गाँव है एवं समवसरण क्षेत्र के पूर्वी प्रवेश द्वार पर स्थित है। पूरा बुन्देलखण्ड भगवान की दिव्यध्वनि से आप्लावित हुआ था और यही कारण है कि इसका प्रभाव आज भी विद्यमान है, क्योंकि पूरे देश के जैन विद्या एवं प्राकृत-संस्कृत के सहस्त्रों श्रेष्ठ विद्वान तथा साहित्य और संयम धर्म साधना के लिए उपयुक्त वातावरण प्रदान करने वाला यही बुन्देलखण्ड है।

बाबाजी ने इसी सिद्धक्षेत्र में रहकर छन्दोदय जैसे महान वृत्ति ग्रन्थ की रचना की है। उन्होंने प्रस्तुत पुस्तक में अपनी नौ पूजाएँ – त्रैलोक्येश, चतुर्विंशति, पंच परमेष्ठी तथा तरण-तारण, जिन स्तोत्र, द्वादश अनुप्रेक्षा, श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ तथा अपने द्वारा ग्रहण किये गये व्रत-नियमों की पोथी संकलित की है।

ये सभी भक्ति और श्रद्धा से परिपूर्ण रचनाएँ विद्वान कवि की अद्भुत प्रतिभा का परिचायक हैं। इन्हें दैनिक पूजन पाठ की पुस्तकों में सम्मिलित किया जाना आवश्यक है, तभी ये प्रचलन में आकर जन-जन

की कण्ठहार बन पायेंगी। इन सब काव्य रचनाओं को तथा कवि द्वारा प्रस्तुत कथ्य विषय को सरल-सहज रूप में पाठक को हृदयंगम कराया जा सकता है, क्योंकि पद्य विद्या का सार्वकालिक महत्व होता है। बाबा दौलतराम जी ने इन भक्ति पूर्ण रचनाओं के माध्यम से जहाँ सैद्धांतिक और अध्यात्म के शिखर को छुआ है, वहीं दूसरी ओर इनमें लोक परंपरागत मिट्टी की महक भी मुझे सुवासित करती है।

कुछ लोग इन्हें संप्रदाय गत मानकर इनकी उपेक्षा कर सकते हैं, किन्तु स्कूल पाठ्यक्रम में शामिल इस तरह की अन्यान्य धर्मों की रचनाएँ भी तो प्रायः इसी श्रेणी की होने से क्या वे सांप्रदायिक नहीं हैं? अतः भाषा, भाव और साहित्य विकास में योगदान के भाव को इस तरह की रचनाओं में देखा जाना चाहिए, न कि संप्रदाय विशेष से, क्योंकि ये सभी रचनाएँ भी उस लोक मंगल की भावना से ओतप्रोत हैं जिनकी गूँज दूर तक सुने जाने की क्षमता रखती है। ये सभी एक उच्च साधक के अंतस से निकली रचनाएँ, वर्षों की साधना का प्रतिफल हैं। इनमें मुझे कहीं भक्ति का रंग दिखता हैं तो कही साधना की तरंग। कुछ में आस्था की गहराई है तो कुछ में बदलते परिवेश का प्रभाव और सौन्दर्य की छटा दिखाई देती है।

इन सभी रचनाओं में लोकभाषा की बोधगम्यता और काव्यगत मधुरता दोनों के एक साथ दर्शन हो जाते हैं। वस्तुतः जिस कवि की अनुभूति सीधी सच्ची होती है, उसका प्रत्यक्षीकरण उतना ही स्पष्ट प्रवाहयुक्त तथा प्रभावक होता है। विशेषकर तपस्वी साधक काव्य-सृजन के क्षेत्र में उतरकर कुछ लिखता है तो वह इतना विशिष्ट एवं प्रभावक बन जाता है कि उसकी गूँज दूर तक जाती है और आगे भी युगानुकूल विस्तार को प्राप्त करती रहती है। यही सब विशेषताएँ बाबा दौलतराम जी वर्णी की छन्दोदय तथा इसमें संकलित सभी रचनाओं में सुगमता से देखी जा सकती है।

इस प्रकार बाबा जी की प्रस्तुत रचनाएँ साहित्यिक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण होने से इनके प्रकाशन का यह प्रयास बहुत ही प्रशंसनीय है। यह भी संभव है कि शास्त्र भण्डारों में अभी उनकी और भी अन्यान्य दुर्लभ अज्ञात रचनाएँ अपने उद्धार की प्रतीक्षा में हों। इनकी खोज-बीन करना हम सभी का दायित्व है, यह भी महान श्रुत सेवा है। इत्यलं विस्तरेण।

आमुख

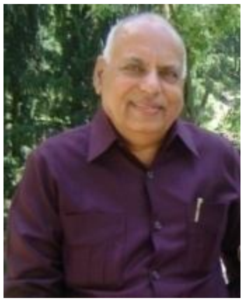

– सुरेश जैन (आई.ए.एस.)
प्रबन्ध सम्पादक
30, निशात कालोनी,
भोपाल–462003
मोबाइल– 94250 10111

गोम्मटसार (जीवकाण्ड तथा कर्मकाण्ड) जैनदर्शन के आधारभूत प्राचीनतम आगम ग्रन्थ षट्खण्डागम का सार हैं। नेमिचन्द्राचार्य की कालजयी और जटिलतम दार्शनिक रचना गोम्मटसार (जीवकाण्ड) का बाबा दौलतराम वर्णी, नैनागिरि ने हिन्दी में पद्यात्मक अनुवाद छन्दोदय शीर्षक से किया है। छन्दोदय षट्खण्डागम और गोम्मटसार का सुस्वादु नवनीत है। छन्दोदय का अध्ययन कर मुझे आचार्य कुन्दकुन्द के आगमिक एवं आध्यात्मिक साहित्य का अमृत सहज ही प्राप्त हो जाता है। यह छन्दोदय भारतीय संस्कृति के चार प्रमुख आध्यात्मिक स्तंभ आचार्य धरसेन, पुष्पदंत, भूतबलि एवं नेमीचन्द्र के अमर शब्दों, मधुर वाणी और मंगल ध्वनि से ओत प्रोत है। छन्दोदय ने हिन्दी अक्षर संसार में बाबा जी को अमर कर दिया है। जैन तीर्थ, नैनागिरि में भगवान पार्श्वनाथ के प्राचीनतम मंदिर में बैठकर बाबा दौलतराम वर्णी द्वारा विरचित हिन्दी पद्य की दार्शनिक काव्य रचना छंदोदय, भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा वर्ष 2018 में प्रकाशित की जा चुकी है। छन्दोदय प्राकृतिक बुंदेली वर्जन है। छन्दोदय लोककण्ठ के लिए सुगेय सरल और मधुर है। बाबा जी का छन्दोदय अविरल बहने वाले मनोहर शास्त्रीय शब्दों का शाश्वत निर्झर है। इस काव्य का सरलतम, संतुलित एवं सुललित वाक्य विन्यास वीणा की भाँति मुझे झंकृत करता है। छन्दोदय की दार्शनिक अभिव्यक्ति भले ही अभी तक अनदेखी, अनसुनी और अनकही रही हो, किन्तु यह सतत पठनीय और चिंतनीय है।

अभी तक मुझे बाबाजी द्वारा हिन्दी पद्य में विरचित छन्दोदय प्रभृति सोलह रचनाएँ प्राप्त हो चुकी हैं। सभी रचनाओं के रचनाकाल के अनुक्रम से 6 सितंबर, 1902 दिन शनिवार को सर्वप्रथम विरचित छन्दोदय 116 वर्षों बाद सन् 2018 में प्रकाशित हो चुका है। शेष 15 रचनाओं में से दो रचनाएँ 11

प्रतिमाएँ और बाबा जी की व्रत नियमों की पोथी-3 जनवरी, 1904 दिन रविवार को और अन्य तेरह रचनाएँ 30 मई, 1904 दिन सोमवार को विरचित हुई हैं। अब ये सभी 15 रचनाएँ 116 वर्षों के बाद छन्दोदय दिवस, 2020 के मंगल अवसर पर **बाबा दौलतराम वर्णी की सोलह रचनाएँ** शीर्षक से प्रकाशित हो रही हैं। सामाजिक उदासीनता और क्रूरकाल की यह विचित्र विडम्बना है कि बाबा जी की सभी रचनाएँ अपने जन्म के द्वादशवें दशक में 116 वर्षों के पश्चात् ही प्रकाशित हो सकी हैं। यह अवश्य उल्लेखनीय है कि बाबा जी की पूजनों में से नैनागिरि-रेशिंदिगिरि पूजन अपनी विरचन की तिथि 30 मई, 1904 से ही समय-समय पर प्रकाशित होती रही है और अपनी जन्म तिथि से ही प्राचीनतम पार्श्वनाथ मंदिर में नियमित रूप से अष्ट द्रव्य से की जाती रही है। बाबा जी की नैनागिरि-रेशिंदिगिरि पूजन पढ़ते ही भगवान पार्श्वनाथ जीवंत होकर मेरे सामने विराजमान हो जाते हैं।

छन्दोदय का अनावरण और लोकार्पण भारत की लोकसभा की अध्यक्ष माननीया श्रीमती सुमित्रा जी महाजन द्वारा 23 मार्च, 2018 को लोकसभा परिसर, नई दिल्ली में किया गया। श्रवणबेलगोल के महा भट्टारक स्वामी चारूकीर्ति जी महाराज को छन्दोदय की पाण्डुलिपि भेंट की गई। इसी क्रम में म.प्र. के मुख्यमंत्री, माननीय श्री शिवराज सिंह चैहान, म.प्र. के राज्यपाल महामहिम अनन्दी बेन पटेल तथा राज्यपाल महामहिम श्री लालजी टंण्डन को छन्दोदय की प्रकाशित प्रति भेंट की गई। जैन तीर्थ, नैनागिरि में बैठकर लिखे गए छन्दोदय की सभी ने मुक्त कंठ से सराहना की।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य ज्ञानसागर जी और उनके परम प्रभावी शिष्य आचार्य विद्यासागर जी को छन्दोदय ने ही छन्दोदय के उत्तरांश उदय शब्द का अपनी रचनाओं और संस्थाओं में बहुतायत से प्रयोग करने के लिए प्रेरित किया है।

इस पुस्तक में छन्दोदय का परिशीलन करते हुए राष्ट्र के वरिष्ठतम विद्वानों के लेख भी प्रकाशित किए जा रहे हैं। यह सभी आलेख देश की सुप्रसिद्ध पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं और अत्यधिक सराहे गये हैं। इन आलेखों में छन्दोदय के प्रतिच्छन्द और प्रतिबिम्ब सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं।

बाबा जी की इस रचना में छन्दोदय के समीक्षण और परिशीलन से संबंधित निम्नांकित आलेख प्रकाशित किए गए हैं-

क्र.सं.	आलेख का नाम	लेखक का नाम
1	बाबा दौलतराम जी, उनका कर्तृत्व और व्यक्तित्व	पं. श्री हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री, ब्यावर

2	बुन्देलखण्ड की कुछ जैन विभूतियाँ	पं. श्री हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री, ब्यावर
3	बाबा दौलतराम वर्णी कृत छन्दोदय का महोदय	पं. शिवचरनलाल जैन, मैनपुरी
4	दौलतरामजी की अज्ञात कृति का जीर्णोद्धार	प्रो. वीरसागर जैन, नयी दिल्ली
5	जैन धर्म का दर्पण गोम्मटसार जीवकाण्ड छन्दोदय	डॉ. प्रेमभारती, भोपाल
6	बाबा दौलतराम वर्णी, नैनागिरि द्वारा विरचित गोम्मटसार जीवकाण्ड के पद्यानुवाद छंदोदय और उनकी 15 रचनाओं पर समीक्षात्मक विमर्श संस्करण 2020	श्री सुरेश जैन (आई.ए.एस.), भोपाल

समेकित रूप से बाबाजी की सभी रचनाएँ पाठक के दृष्टि पथ में रखने के उद्देश्य से उनके द्वारा वर्ष 1904 में विरचित छोटी-छोटी 15 रचनाओं के साथ ही छन्दोदय के परिशीलन एवं समीक्षण से संबंधित इन आलेखों को प्रकाशित किया गया है। इस पुस्तिका में प्रकाशित रचनाओं के खोज की कथा श्री सुरेश जैन के उपरिलिखित आलेख में विस्तृत रूप से अंकित की गयी है।

बाबा दौलतराम वर्णी, नैनागिरि द्वारा वर्ष 1904 में विरचित और अभी तक अप्रकाशित निम्नांकित पूजन एवं विविध रचनाएँ संकलित कर इस पुस्तक में सर्वप्रथम प्रकाशित की जा रही हैं। हिन्दी के संत साहित्यकार और जैन शास्त्रकार वर्णी जी द्वारा प्रभावी शब्दों तथा लोकप्रिय और मधुर छंदो में विरचित इन सभी रचनाओं में भगवान की अर्चना, आराधना और उपासना की गयी है। सभी सोलह रचनाएँ तीर्थंकरों और तीर्थों का गुणगान करती हैं। सोलहकारण भावनाओं की भाँति मोक्ष पथ पर आगे बढ़ने में सहायक हैं। बाबा जी का यह आध्यात्मिक प्रदेय हम सबके लिए सुस्वादु पाथेय है। श्रम-साध्य मौलिक सृजन और मूल रचना कर्म से ओतप्रोत इन रचनाओं में जैन दर्शन के व्यावहारिक सिद्धांत दर्पण की भाँति स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होते हैं। इन रचनाओं में सर्वत्र अध्यात्मिक वर्णमाला विखरी हुई है। इस वर्णमाला के स्वर, अक्षर तथा व्यंजन पारस्परिक रूप से मिल-जुलकर शब्द बनते हैं और मुझे आध्यात्मिक विकास के पथ पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा देते है।

बाबा जी द्वारा चौदह छंदों में ग्यारह प्रतिमाओं की विवेचना और अपने द्वारा धारण किए गए व्रत-नियमों की पोथी की सैंतीस छंदों में रचना पौष शुक्ला पूर्णिमा संवत् 1961 (तदनुसार 3 जनवरी, 1904 रविवार) को पूर्ण की गयी। इसकी पुष्टि में उनके द्वारा विरचित सैंतीसवाँ छंद नीचे उद्धृत किया जा रहा है-

विधु कुलगिरि हरि नियतवृष पौष धवल दिन अंत।

लिखे छंद निज दौल यह करन कंठ हित संत ।।37।।

इस छंद में विधु अर्थात् चन्द्र एक, कुलगिरि अर्थात पर्वत छह, हरि अर्थात देवता नौ तथा नियत वृष अर्थात निश्चत धर्म एक अंक के सूचक हैं। इस विवरण से 1 6 9 1 चार अंक निकलते हैं। अंकों की वामगति से संवत् 1961 की गणना होती है। पौष शुक्ल पूर्णिमा संवत 1961 तदनुसार 3 जनवरी, 1904 रविवार को यह रचना पूर्ण हुई।

बाबा जी के व्रत-नियमों की यह छोटी सी पोथी अत्यधिक महत्वपूर्ण कृति है, जो वर्तमान आध्यात्मिक संतों को चारित्रिक विकास के महत्वपूर्ण सूत्र प्रदान करती है। सामान्यतः सभी जैन संहिताएँ विधि-निषेध में से निषेध के सिद्धांत पर आधारित है। बाबा जी ने विधि के सकारात्मक एवं स्पष्ट सिद्धांतों का उपदेश ही नहीं दिया, अपितु स्वयं अपने जीवन में पालन करते हुए वर्तमान संतों के समक्ष स्वल्प संतोषी संत का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया है। उन्होंने भौतिक वस्तुओं के न्यूनतम भोग और अल्पतम उपभोग करने की आदर्श सूची निर्धारित की है। उन्होंने नैनागिरि को केन्द्र में रखते हुए 125 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में परिभ्रमण करने का नियम ले लिया था।

उपरिलिखित दो रचनाओं की पूर्णता के बाद पाँच माह की अवधि में ही बाबा जी ने नैनागिरि (रेशिंदिगिरि - ऋषीन्द्रगिरि) पूजन सहित हिन्दी पद्य में अपनी तेरह छोटी-छोटी अन्य रचनाएँ ज्येष्ठ कृष्ण एकम् (प्रतिपदा) संवत् 1961 तदनुसार 30 मई, 1904 सोमवार को पूर्ण की।

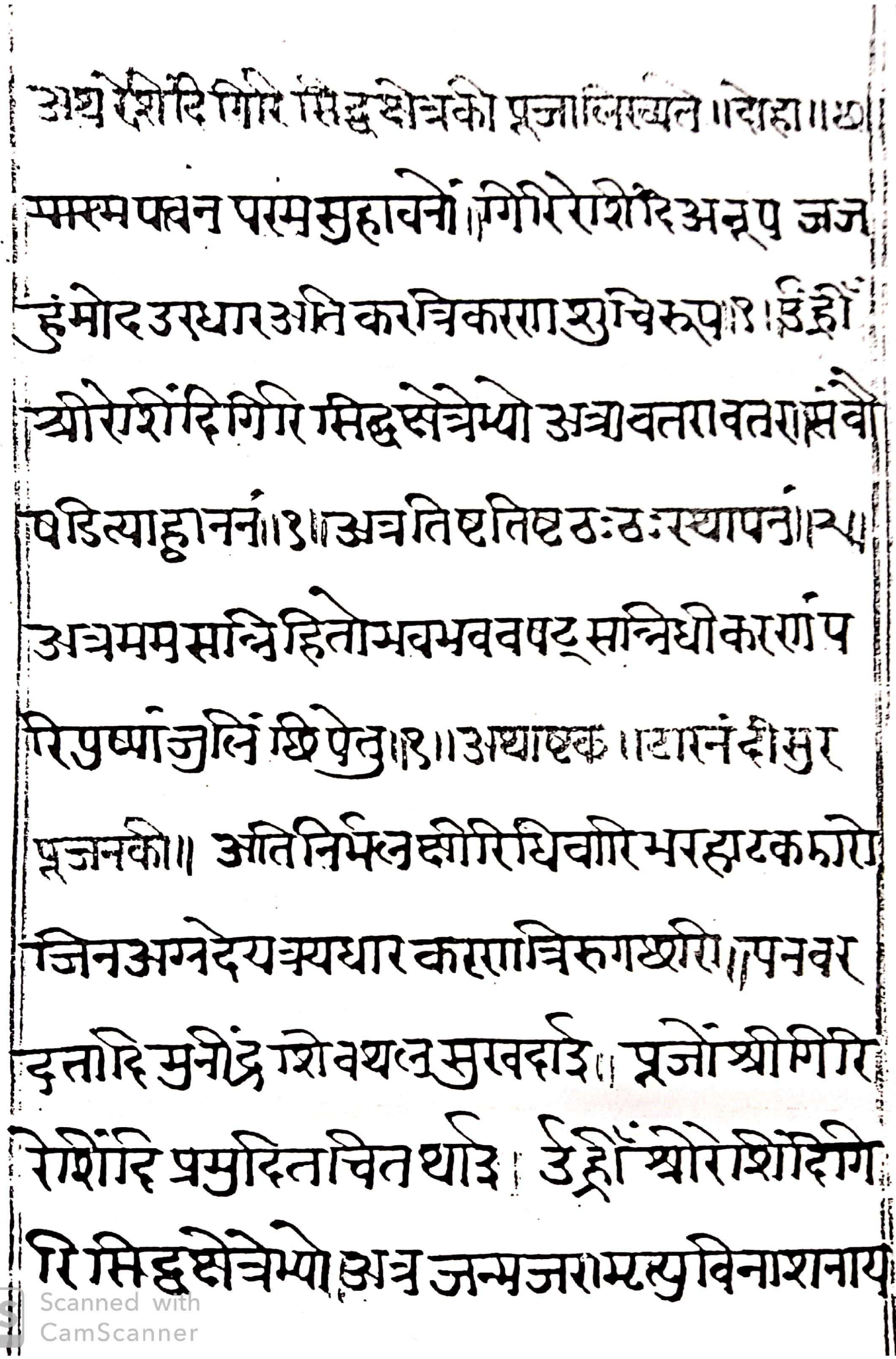

अथ रेशिंदि गिरि सिद्धक्षेत्रको पूजा लिख्यते ।। दोहा ।। छ ।।
स्मस्म पवन परम सुहावनों । गिरि रेशिंदि अनूप जज
हूं मोद उरधार अति कात्रिकरण शुचि रूप ।१। ॐ ह्रीं
श्री रेशिंदि गिरि सिद्धक्षेत्रेभ्यो अत्रावतरावतर संवौ
षडित्याह्वाननं ।१। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं ।२।
अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं प
रिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ।३।। अथाष्टक ।। टारनंदी सुर
पूजनको ।। अति निर्मल क्षीरोदधि वारि भर झारक कोरा
जिन अग्रदेय त्रयधार कारण त्रिरुग छोरा ।। पनवर
दत्तादि मुनींद्र गये शिवथल सुखदाई । पूजों श्री गिरि
रेशिंदि प्रमुदित चित थाई । ॐ ह्रीं श्री रेशिंदिगि
रि सिद्धक्षेत्रेभ्यो अत्र जन्मजरामृत्यु विनाशनाय

Scanned with CamScanner

बाबा जी द्वारा वर्ष 1904 में हस्तलिखित नैनागिरि–रेशिंदिगिरि पूजन का छायाचित्र

ब्र. संदीप 'सरल', अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान, श्रुतधाम, बीना, जिला सागर के पुस्तकालय से बाबा दौलतराम जी वर्णी द्वारा हस्तलिखित तेरह रचनाओं की मूल प्रति मुझे प्राप्त हुई। बाबा दौलतराम वर्णी द्वारा अपनी इस हस्तलिखित पुस्तिका में नौ पूजनों – तीन निर्वाण क्षेत्र पूजन, नैनागिरि-रेशिंदिगिरि पूजन और पाँच दैनिक पूजन, तीन स्तोत्रों – त्रैलोक्येश चतुर्विंशति जिन स्त्रोत, पंचपरमेष्ठी स्त्रोत और तरण-तारण स्तोत्र – तथा द्वादशानुप्रेक्षा इस प्रकार तेरह रचनाओं को सम्मिलित किया गया है। इस प्रकार बाबा जी ने लोक में प्रतिदिन की जाने वाली चार पूजाओं – देवशास्त्र गुरू पूजन, विद्यमान विंशति तीर्थंकर पूजन, कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालय पूजन और शांतिनाथ पूजन – की रचना की है। चैबीस तीर्थंकरों के पाँच निर्वाणक्षेत्रों में से तीन क्षेत्रों – शिखर सम्मेद, पावापुरी और चंपापुरी – पर स्वतंत्र रूप से तीन पूजाएँ विरचित की गयी हैं। शेष दो क्षेत्रों कैलाश और गिरनार पर पूजा नहीं लिखी गयी है किन्तु पाँचों तीर्थंकर निर्वाण क्षेत्रों पर समेकित निर्वाण क्षेत्र पूजन लिखी गयी है। इसके साथ ही रेशिंदिगिरि (नैनागिरि) सिद्धक्षेत्र पूजा विरचित की गयी है।

यह उल्लेखनीय है कि लाखों वर्ष पूर्व भगवान पार्श्वनाथ के द्वितीय भवधारी गजराज वज्रघोष ने नैनागिरि में घनघोर तपस्या कर स्वर्गारोहण किया था। भगवान नेमीनाथ के काल में ऋषीन्द्रगिरि (रेशंदीगिरि – नैनागिरि) से वरदत्तादि पाँच मुनिवर मोक्ष पधारे थे और भगवान पार्श्वनाथ ने नैनागिरि में आयोजित समवसरण में अपनी देशना दी थी। संभवतः इन्ही तथ्यों को ध्यान में रखते हुए दौलतराम जी वर्णी ने निर्वाण क्षेत्रों के ही समकक्ष नैनागिरि क्षेत्र को महत्त्व प्रदान किया और निर्वाण क्षेत्र की भाँति इस तीर्थ पर स्वतंत्र पूजा की रचना की ।

इस पुस्तिका में सम्मिलित रचनाओं के संबंध में द्वादशानुप्रेक्षा के अंतिम तीन दोहों में से निम्नांकित दोहे में इस ग्रन्थ के पूर्ण होने की तिथि का उल्लेख किया गया है-

शशि कुलगिरि पद नियत वृष, ज्येष्ठ अधिक अलितास।
प्रतिपद ज्येष्ठा रिख महीं पूरण किय सुखरास।।2।।

उपरिलिखित दोहे के प्रथम पद 'शशि कुल गिरि पद नियत वृष' में अंकित शशि अर्थात चन्द्रमा एक है। कुल गिरि अर्थात पर्वत छह हैं। पद अर्थात पद के धारी देवता नौ होते हैं। नियत वृष अर्थात निश्चय धर्म एक है। इस प्रकार इस दोहे के प्रथम पद से चार अंकों क्रमशः – एक, छह, नौ और एक – की जानकारी मिलती है। अंको की वाम गति के सिद्धांत से ये अंक क्रमशः एक, नौ, छह और एक हो जाते हैं। इस प्रकार इन अंकों के आधार पर विक्रम संवत् 1961 ज्ञात होता है। इस दोहे के द्वितीय और तृतीय

पद से यह ज्ञात होता है कि यह रचना द्वितीय ज्येष्ठ कृष्णा एकम् (प्रतिपदा) को पूर्ण हुई। ज्येष्ठ अधिक का अर्थ है द्वितीय ज्येष्ठ। अलितास का अर्थ है भ्रमर की भाँति काला अर्थात् कृष्ण पक्ष। प्रतिपदा का अर्थ है एकम्। ज्येष्ठा रिख का अर्थ है ज्येष्ठा नक्षत्र। इस दोहे का चतुर्थ पद ग्रन्थ पूर्ण कर अनंत सुख प्राप्त करने का द्योतक है। इससे स्पष्ट है कि यह रचना द्वितीय ज्येष्ठ कृष्णा एकम् (प्रतिपदा) ज्येष्ठा नक्षत्र और वृश्चिक राशि विक्रम संवत् 1961 को पूर्ण हुई। ईसवी सन् के अनुरूप यह रचना कार्य 30 मई, 1904 सोमवार को सम्पन्न हुआ। यह रचना पूर्ण करने से बाबा दौलतराम जी को अपार सुख प्राप्त हुआ।

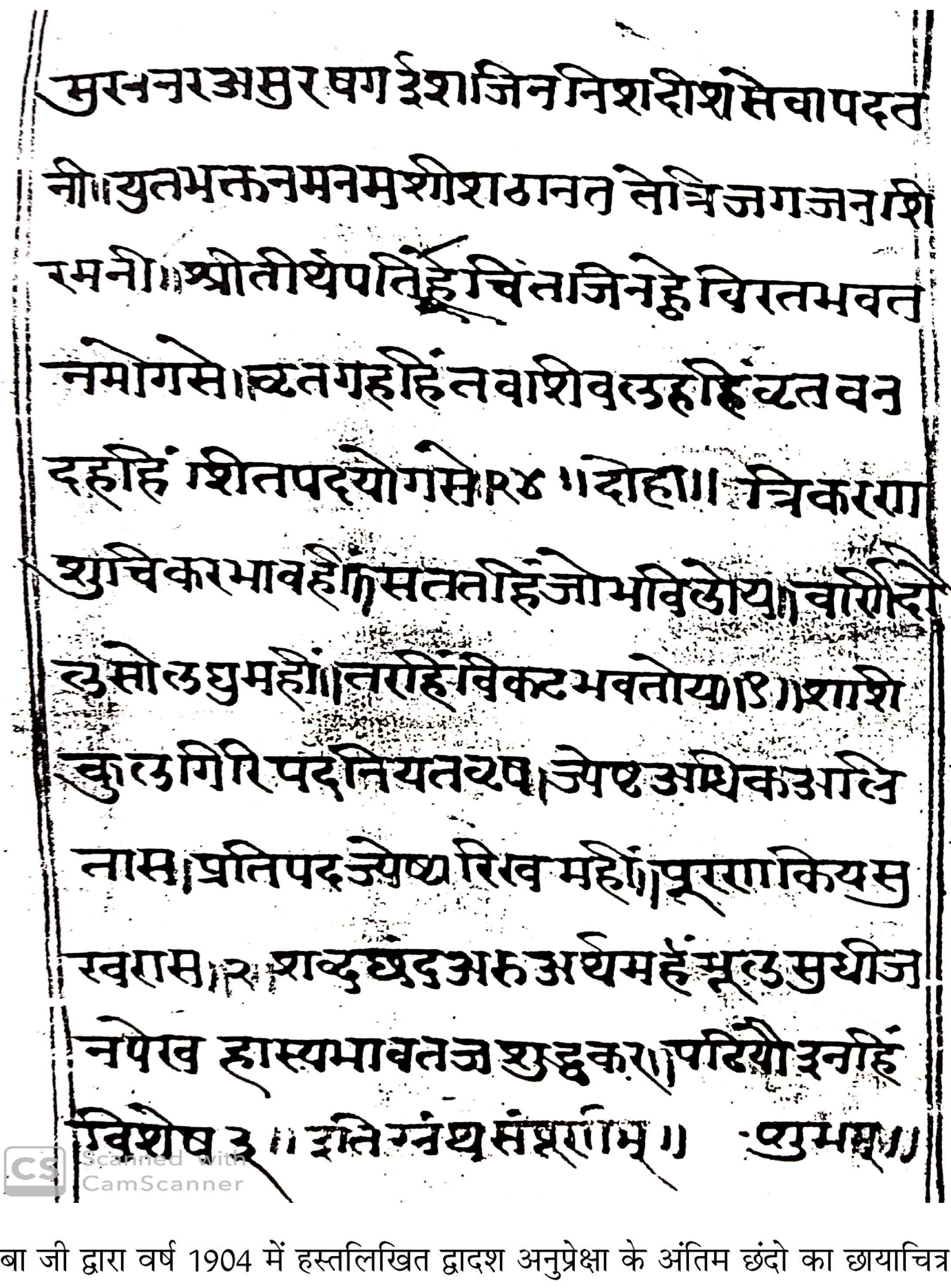

सुरनरअसुरखगईशजिननिशदीशसेवापदत
नी॥युतभक्तनमनमुशीशठानतत्रिजगजनशि
रमनी॥श्रोतीर्थेपतिहुचिंतजिनहुविरतभवत
नभोगसे।व्रतगहहिंतवाशिवलहहिंव्रतवन
दहहिंगशितपदयोगसे॥२४॥दोहा॥त्रिकरण
शुचिकरभावहीं॥सततहिंजोभविलोय॥वारिदि
लसोलघुमहों॥तरहिंविकटभवतोय॥१॥शशि
कुलगिरिपदनियतवष॥जेष्ठअधिकअलि
तास॥प्रतिपदज्येष्ठारिखमहीं॥पूरणकियसु
खरास॥२॥शब्दछंदअरुअर्थमहं भूलसुधीज
नपेख हास्यभावतजशुद्धकर॥पढियोइनहिं
विशेष ३॥ इतिग्रंथसंपूर्णम्॥ शुभम्॥

बाबा जी द्वारा वर्ष 1904 में हस्तलिखित द्वादश अनुप्रेक्षा के अंतिम छंदो का छायाचित्र

बाबा जी ने वर्ष 1902 से 1904 के बीच नैनागिरि में विराजमान रहकर विरचित सोलह रचनाओं में से छंदोदय, 6 सितम्बर, 1902 शनिवार, ग्यारह प्रतिमाओं एवं व्रत नियमों की पोथी 3 जनवरी, 1904 रविवार और अन्य तेरह रचनाएँ 30 मई, 1904 सोमवार को पूर्ण की है। यह संयोग है या बाबा जी का पूर्व निर्णय कि तीनों श्रेणी की रचनाएँ क्रमशः शनिवार, रविवार और सोमवार को पूर्ण हुई हैं। मैंने अपने आलेख *बाबा दौलतराम वर्णी, नैनागिरि द्वारा विरचित गोम्मटसार जीवकाण्ड के पद्यानुवाद छन्दोदय और उनकी अन्य 15 रचनाओं पर समीक्षात्मक विमर्श* के साथ संलग्न तालिका में इन रचनाओं के काल, उद्देश्य एवं रचना संबंधी वैशिष्ट्य को विस्तृत रूप से प्रदर्शित किया है।

हिन्दी जगत के पुरोधा श्रद्धेय बाबा जी द्वारा वर्ष 1902 और 1904 में विरचित सभी रचनाएँ 116 वर्षों तक अप्रकाशित रहीं। इन सोलह रचनाओं की खोज कर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। यह मेरे जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है। इन उपलब्धियों को अपने पाठकों के हाथों में सौंपकर मैं अत्यधिक आनंदित हूँ। यह प्रसन्नतादायक है कि चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर महाराज के मुनि दीक्षा महोत्सव के स्वर्णिम वर्ष में बाबा जी की रचनाएँ प्रकाशित की जा रही हैं।

पूज्य मुनिवर अभयसागर जी की अनुकंपा से ब्र. संदीप 'सरल' अनेकांत ज्ञान मंदिर शोध संस्थान, श्रुतधाम, बीना जिला, सागर ने मुझे बाबा जी द्वारा विरचित पूजनों की पाण्डुलिपि उपलब्ध करायी है। गुरूदेव के लिए नमोस्तु। सरल जी के लिए सादर साधुवाद। बाबा जी की इस पुस्तक में संकलित रचनाओं के पाठ संशोधन करने में मुझे सर्वप्रथम पण्डित शिवचरणलाल जैन, मैनपुरी का स्नेहपूर्ण मार्गदर्शन मिला है। पण्डित जी की सराहनीय और अनुकरणीय अपार बौद्धिक क्षमता और असाधारण प्रत्युत्पन्न मति मुझ जैसे प्रशासकों को जैन साहित्य का अध्ययन और लेखन करने के लिए प्रोत्साहित करती है। मेरे पारिवारिक मित्र, अभिन्न साथी और नैनागिरि के पूर्वी प्रवेश द्वार पर स्थित दलपतपुर के निवासी तथा वाराणसी के प्रवासी उद्भट और अनुभवी वरिष्ठ विद्वान् डॉ. फूलचन्द्र जी 'प्रेमी' ने गहन अध्ययन कर इस पुस्तक की *अंतर्ध्वनि* शीर्षक से विस्तृत, समावेशी तथ्यात्मक एवं सार्थक भूमिका लिखकर मुझे सदैव की भाँति अपने स्नेह से अभिषिक्त किया है। डॉ. प्रमोद जैन, जयपुर ने छन्दोदय की भाँति इस पुस्तक का सम्पादन कर अत्यधिक सराहनीय कार्य किया है। उन्होंने जैन दर्शन और हिन्दी पद्य साहित्य की इन अमूल्य रचनाओं के मूल स्वरूप को अक्षुण्ण रखते हुए उसे बोधगम्य और सरल बनाया है। इस पुस्तक में प्रयोग किये गये हिन्दी और संस्कृत के छंदो के सुसंगत नाम दिए है। उन्होंने अपनी शैक्षणिक व्यस्तताओं के रहते हुए भी न्यूनतम अवधि में इस पुस्तक का सम्पादन किया है। उन्हें हार्दिक धन्यवाद एवं शुभकामनाएँ।

बीसवीं और इक्कीसवीं शताब्दियों में प्राचीन पाण्डुलिपियों के प्रकाशन में भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली की सर्वोच्च स्तरीय सराहनीय भूमिका रही है। इस संस्था ने अपने अनुपम और असाधारण अवदान के द्वारा समग्र जैन समाज का ही नहीं अपितु पूरे देश का सांस्कृतिक एकीकरण किया है। भारतीय ज्ञानपीठ के पितृ पुरूष श्रद्धेय साहू शांतिप्रसाद जी, श्रद्धेय साहू रमेशचन्द्र जी और श्रद्धेय साहू अशोक कुमार जी ने मेरे छात्र जीवन और यौवन काल में सतत सहयोग देकर मुझे आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया। अतः मैं उन्हें सादर श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ। प्रबंध निदेशक श्री साहू अखिलेश जी और श्री सोमचन्द्र जी ने नैनागिरि स्थित सिंघई सतीशचन्द्र केशरदेवी जैन विद्यालय को सहज ही सहयोग प्रदान कर और इस पुस्तक का प्रकाशन कर मुझे उपकृत किया है। इसके लिए मैं उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। इन रचनाओं के साथ ही छन्दोदय के उदय के 118 वर्ष पूर्ण होने पर छन्दोदय के पुनरुदय के लिए उन्हें हार्दिक बधाई देता हूँ। मेरे जीवन के 75वें वर्ष में भारतीय ज्ञानपीठ परिवार द्वारा प्रदत्त यह परम प्रिय प्रकाशन पुष्प प्राप्त कर मुझे अपार प्रसन्नता है।

मैं अपनी धर्मपत्नी न्यायमूर्ति विमला जी, चारों बच्चों – विद्युत, विकास, विधि और विधान – और मेरे सतत सहयोगी श्री जितेन्द्र कुमार जैन के अनवरत सहयोग के लिए अनुगृहीत हूँ। अंत में मेरा पाठकों से विनम्र आग्रह है कि इस ग्रन्थ का अध्ययन कर अपने अमूल्य सुझाव मुझे अवश्य प्रेषित करें जिससे कि इस पुस्तक में संकलित रचनाओं के नये–नये आयाम उद्घाटित हो सकें।

छन्दोदय दिवस, 2020 —सुरेश जैन (आई.ए.एस.)

सम्पादकीय

– डॉ. प्रमोद जैन, जयपुर

ए–4, बापूनगर, जयपुर–302015

Email : pramodejain@gmail.com

मोबाइल– 7690016098

हिंदी–साहित्य के इतिहास में 'दौलतराम' नाम के नौ विद्वानों का परिचय प्राप्त होता है; किन्तु उनमें से दो दौलतराम ही जैन समाज में अधिक लोकप्रिय रहे हैं– एक तो 'छहढाला' वाले दौलतराम जी और दूसरे 'पद्मपुराण–भाषावचनिका' वाले दौलतरामजी।[1] 'गोम्मटसार जीवकाण्ड छन्दोदय' नामक महत्त्वपूर्ण कृति प्रकाश में आने पर उसके रचयिता बाबा दौलतराम वर्णी भी हिन्दी साहित्य और जैन समाज में प्रतिष्ठित हो चुके हैं। छन्दोदय के अतिरिक्त 15 अन्य रचनाएँ प्रकाश में आने पर इनके रचनाकार दौलतराम जी भी अपने रचना–कौशल के द्वारा निःसन्देह लोकप्रियता प्राप्त करेंगे।

बाबा दौलतराम वर्णी की प्रथम और प्रमुखतम कृति छन्दोदय की हस्तलिखित प्रति श्री ऐलक पन्नालाल दिगम्बर जैन सरस्वती भवन, ब्यावर, राजस्थान से; 13 कृतियाँ अनेकान्त ज्ञान मन्दिर शोध संस्थान, श्रुतधाम, बीना, जिला सागर, मध्यप्रदेश से तथा ग्यारह प्रतिमाएँ एवं व्रत नियम पोथी ये 2 कृतियाँ मध्यप्रदेश के अन्य प्राचीन शास्त्र भण्डारों से प्राप्त हुई हैं। सम्पादन के उपरान्त छन्दोदय का प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली द्वारा वर्ष 2018 में किया जा चुका है। छन्दोदय की उत्कृष्टता और महत्ता को देखते हुए रचनाकार की अन्य रचनाओं को भी प्रकाश में लाने की आवश्यकता उत्पन्न हुई है।

उक्त हस्तलिखित प्रतियों के पाठान्तर उपलब्ध न होने से पाठ–संशोधन मुख्यतः भाषा और छन्द की दृष्टि से किया गया है। वर्णी जी की भाषा के मूल स्वरूप को अक्षुण्ण रखते हुए शब्दों के संबंध में सन्देह–निवारण के लिए, उनमें समरूपता लाने के लिए और उन्हें बोधगम्य बनाने के लिए उनका निम्नानुसार परिमार्जन किया गया है–

---

[1] प्रो. वीरसागर जैन पी.एच.डी. शोधप्रबन्ध

1. 'ॐ ह्रीं देव.' के स्थान पर 'ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो' और 'निर्वि.' के स्थान पर 'निर्वपामीति स्वाहा' किया गया है।
2. बीस तीर्थंकर पूजा में जल के छन्द के बाद अन्यत्र मन्त्र नहीं दिये गये हैं इसलिए वहाँ मन्त्र जोड़े गये हैं।
3. 'ॐ ह्रीं तीन लोक संबंधी कीर्त्ताकीर्त्तम' के स्थान पर 'ॐ ह्रीं त्रिलोकसम्बन्धि-कृत्रिमाकृत्रिम' तथा सम्बोधन में 'श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्रेभ्यो' के स्थान पर 'श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्र' किया गया है।
4. 'छपेतु' के स्थान पर 'क्षिपेत्' किया गया है।
5. सास्त्र, स्वेत आदि में 'स' के स्थान पर 'श' तथा सहश्र, तेईश आदि में 'श' के स्थान पर 'स' किया गया है।
6. रिषीश आदि में 'र' के स्थान पर 'ऋ' तथा 'तीर्थकरता' के स्थान पर 'तीर्थकर्ता' किया गया है।
7. कर्म के अर्थ में प्रयुक्त 'विध' के स्थान पर 'विधि' तथा 'अंबुध' के स्थान पर 'अंबुधि' किया गया है।
8. वाह्य आदि में 'व' के स्थान पर 'ब' किया गया है।
9. 'तातें' के स्थान पर 'तातैं' तथा 'में' के स्थान पर 'मैं' किया गया है।
10. 'पद्धरी' के स्थान पर 'पद्धरि' किया गया है तथा छन्दों के नाम के साथ प्रयुक्त 'छन्द' शब्द अनावश्यक होने से हटाया गया है।

बाबा दौलतराम जी की रचनाओं के सम्पादन के साथ-साथ उनका धार्मिक एवं साहित्यिक दृष्टि से अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि सभी रचनाएँ दार्शनिक पक्ष, भाव पक्ष और कला पक्ष सभी दृष्टियों से न केवल प्रौढ़ता से परिपूर्ण हैं, अपितु तीनों पक्षों के सन्तुलन से ओतप्रोत हैं। छन्दोदय में दार्शनिक विषय-वस्तु का प्राधान्य होने पर भी भाव पक्ष और कला पक्ष तिरोहित नहीं हुआ है। इसी प्रकार पूजन और स्तुति परक रचनाओं में भाव पक्ष मुख्य होने पर भी दार्शनिक तत्त्व उपेक्षित नहीं हुए हैं। वर्णी जी के सम्पूर्ण साहित्य की भाषा तत्कालीन प्रचलित क्रिया रूपों जैसे- कहुँ, जजहुँ, खिपौं, जजौं, अरचौं, निवसैं, जजहिं, जैहौं, रहैंहौं इत्यादि को आत्मसात् करते हुए प्रवाहशीलता को अक्षुण्ण बनाये रखती है।

दार्शनिक पक्ष-

वर्णी जी की रचनाएँ सिद्धान्त और व्यवहार के समन्वय की सूचक हैं। एक ओर उन्होंने सिद्धान्त के सार से गर्भित गोम्मटसार जीवकाण्ड छन्दोदय की रचना की और दूसरी ओर धर्म के व्यवहार पक्ष का प्रतिनिधित्व करने वाले पूजन व स्तुति साहित्य की भी रचना की। बाबा जी की ये उभय पक्ष से संबंधित रचनाएँ उनके व्यक्तित्व में समाहित सिद्धान्त और व्यवहार के सन्तुलन को तो दर्शाती ही हैं, पाठकों को भी अपने जीवन में इसप्रकार के सन्तुलन को स्थापित करने की प्रेरणा देती हैं।

वर्णी जी के पूजन व स्तुति साहित्य की विशेषता यह है कि इसमें किसी प्रकार की लौकिक वांछा नहीं की गयी है। इसके अतिरिक्त उनकी किसी भी पूजन में सचित्त पुष्प, सचित्त नैवेद्य, सचित्त फल तथा अग्निकायिक दीप का प्रयोग नहीं किया गया है। कल्पद्रुमीय, सुराल, अमरारी, सुर वृक्ष, अमर तरु, त्रिदश तरु, अचेत वृक्ष, दिवालयी आदि शब्दों का प्रयोग कर कल्पवृक्ष के पुष्पों को ही अष्ट द्रव्य में ग्रहण किया गया है। 'मिष्टान्न वान शुचि हीन जलाद्रिताई'[1] कहकर सचित्त नैवेद्य का स्पष्टत: निषेध किया गया है। अचित्त, शुष्क आदि विशेषणों से युक्त फल का प्रयोग किया गया है। सभी पूजनों में मणिमय, रत्नमय या रत्नीय दीप शब्दों का प्रयोग किया गया है। इससे स्पष्टत: ज्ञात होता है कि जैन दर्शन की मूल भावना के अनुरूप बाबा जी पूर्णत: अहिंसक और निर्दोष पूजन सामग्री के ही प्रयोग के पक्षधर थे।

भाव पक्ष-

बाबा दौलतराम वर्णी जी ने गोम्मटसार जीवकाण्ड की सूक्ष्म और जटिल विषय-वस्तु को सरलता से प्रस्तुत करके रम्य और गेय बना दिया है। इससे वह जन-सामान्य के लिए भी बोधगम्य एवं हृदयग्राही बन गयी है। उनकी अधिकतर रचनाएँ भक्ति प्रधान हैं। हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन काव्यों में सख्यभाव, वात्सल्यभाव, प्रेमभाव, विनयभाव और शान्तभाव से सराबोर भक्ति-वैविध्य दृष्टिगोचर होता है, किन्तु जैन और जैनेतर सभी भक्त कवियों ने भक्ति में शान्त रस को ही प्रधानता दी है। संसार से विरक्ति अथवा तत्त्वज्ञान होने पर जो राग-द्वेष मुक्त शान्ति की अनुभूति होती है वही शान्त रस है।

'अष्टौ नाट्ये रसा: स्मृता:'[2] कहकर भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में आठ ही रसों को स्वीकार किया है, लेकिन 'शान्तोऽपि नवमो रस:'[3] कहकर मम्मटाचार्य ने नौवें शान्त रस की स्थापना की है। पूर्ववर्ती साहित्याचार्यों ने शान्ति को अनिर्वचनीय आनन्द का विधायक न मानते हुए तथा भावशून्यता के कारण शान्ति को अनभिनेय मानते हुए शान्त को रसों में सम्मिलित नहीं किया था, परन्तु पण्डितराज जगन्नाथ ने अपने तर्कों से उनका खण्डन करते हुए शान्त को रस के रूप में प्रतिष्ठापित कर दिया। जैनाचार्यों ने न केवल शान्त को नौवाँ रस स्वीकार किया है, अपितु शृङ्गार के स्थान पर शान्त को ही रसराज माना है; क्योंकि अनिर्वचनीय आनन्द की सच्ची अनुभूति राग-द्वेष रूप मनोविकारों के उपशम होने पर ही होती है। कविवर बनारसीदास जी ने तो आठ रसों का अन्तर्भाव शान्त रस में ही करके 'नवमो शान्त रसनि कौ नायक' माना है।

---

[1] शान्तिनाथ पूजन, अष्टक, नैवेद्य छन्द

[2] नाट्यशास्त्र, 6/15

[3] काव्यप्रकाश, 4/47

बाबा जी की व्रत नियम की पोथी से उनकी संसार से विरक्ति का और गोम्मटसार जीवकाण्ड छन्दोदय की रचना से उनके सूक्ष्म तत्त्वज्ञान का पता चलता है। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में शान्त रस बहुलता से प्रस्फुटित हुआ है। विशेष रूप से शान्तिनाथ भगवान् की पूजन की रचना से बाबा जी का शान्त रस की ओर विशेष झुकाव सूचित होता है। भवाताप शान्तक शान्त पद की अभिलाषा से शान्तिनाथ भगवान की शान्त मुद्रा की पूजा में तो बाबा जी का शान्त रस उमड़ पड़ा है-

भव तप शांतक शांत पद, प्रद नुत शत शक्रेश।
परम शांत मुद्रा निरखि, पूजौं शांति जिनेश।।[१]

शान्तिनाथ भगवान् के द्वारा चक्रवर्ती का वैभव तिनके समान त्याग दिये जाने का चित्रण करके बाबा जी ने संसार की असारता व्यक्त करते हुए मानो शान्त रस का निर्झर ही प्रादुर्भूत कर दिया है-

हे पंचम चक्रपती विशाल, षट् खंड महीपाली दयाल।
नृप नमत सहस बत्तीस पाय, नव निधि चतु दस रतनेश थाय।।
अमरोपनीत भुगते सुभोग, तिय सहस छ्यानवै युत मनोग।।
दस अष्ट कोड़ हय तेजवंत, गज लक्ष असी चतु के महंत।।
सम तनुज मोह चारित बसाय, वर मुकुट बंध जस गाय गाय।
लह योग चित्त वैराग धार, त्यागी कमला तृण सम विचार।।[२]

यहाँ 'भुगते सुभोग' के स्थान पर 'भोगे सुभोग' का प्रयोग करने पर भी छन्द-भंग नहीं होता, परन्तु 'भुगते' शब्द से भोगों के प्रति विरक्ति परिलक्षित होती है, जिससे शान्त रस ध्वनित होता है। शान्तिनाथ चक्रवर्ती जन्म से ही सम्यग्दृष्टि ज्ञानी थे। ज्ञान-वैराग्य से सम्पन्न होने के कारण ज्ञानी भोगों का सेवन करता हुआ भी नहीं करता है - आचार्य अमृतचन्द्र के इस मन्तव्य को बाबा जी ने एक 'भुगते' शब्द के माध्यम से व्यक्त कर दिया-

ज्ञानवैभवविरागताबलात् सेवकोऽपि तदसावसेवकः।[३]

द्वादश अनुप्रेक्षा तो पूरी ही शान्त रस से ओतप्रोत है। अशरण भावना का वर्णन अशरण संसार से विरक्ति उत्पन्न करा देता है-

मृग पति क्रमागत मृगहिं वन महिं जिम न कोइ रखावहीं।

---

[1] शान्तिनाथ पूजन, स्थापना

[2] शान्तिनाथ पूजन, जयमाल

[3] समयसार कलश, 135

यम ग्रसत जीवन रखन तिम को भी कभी समरथ नहीं।।[1]

कला पक्ष-

गोम्मटसार जैसे कठिन विषय की व्याख्या करके उसके गणितीय विषयों को भी पद्य में पिरो देना वर्णी जी के विलक्षण रचना-कौशल को दर्शाता है। उदाहरण के लिए गुणप्रत्यय अवधिज्ञान के 6 भेद और सामान्य अपेक्षा अवधिज्ञान के 3 भेद - इन सभी भेदों के नामों को एक ही छन्द में गूँथ देना उनकी रचनात्मक निपुणता को प्रदर्शित करता है-

सो ज्ञान गुणप्रत्यय अवधि षट भाँति सुखदाता छता।
अनुगामि अरु पुन अननुगामी अवस्थित अनवस्थिता।।
अरु वर्द्धमान जु हीयमान सु बहुर त्रिविध बखानिये।
देशावधिरु परमावधिम सर्वावधिम इम जानिये।।[2]

शब्दगुम्फन-कौशल के साथ-साथ वर्णी जी का अर्थगुम्फन-कौशल भी उत्तम स्तर का है। दो लघु पंक्तियों में देव, शास्त्र और गुरु तीनों के निर्दोष स्वरूप का वर्णन कर देना गागर में सागर भरने के समान है-

जिन अठदस दोष विमुक्त, शास्त्र जिनोक्त सही।
अरचौं गुरु रत्नत्रि युक्त, ग्रंथ दुभेद जही।।[3]

छन्द-रचना के वार्णिक और मात्रिक दोनों प्रकारों में वर्णी जी निपुण हैं। उनकी रचनाओं में वर्णों या मात्राओं का कहीं भी व्यभिचार नहीं है। मात्रिक छन्दों की तरह वार्णिक छन्दों में भी सहजता और प्रवाहात्मकता के दर्शन होते हैं। मात्रिक छन्दों में दोहा, सोरठा, चौपाई, रोला, पद्धरि, धत्ता, मोतियादाम, तोटक, सुन्दरी, गीता, कुसुमलता, गीतिका, सवैया तेईसा, सवैया इकतीसा, अडिल्ल, चाल आदि प्रमुख हैं। वार्णिक छन्दों में वसन्ततिलका का प्रयोग बीस तीर्थंकर पूजन, शान्तिनाथ पूजन और पंच परमेष्ठी स्तोत्र में तथा शार्दूलविक्रीडित का प्रयोग त्रैलोक्येश चतुर्विंशति जिन स्तोत्र और पंच परमेष्ठी स्तोत्र में किया गया है।

वर्णी जी की रचनाओं में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों ही उपलब्ध होते हैं। शब्दालंकार में अनुप्रास अलंकार बहुलता से दृष्टिगोचर होता है। निम्नांकित छन्द के पूर्वार्द्ध में श की पूर्ववर्ती ए के साथ और उत्तरार्द्ध में श की पूर्ववर्ती ई के साथ आवृत्ति होने से अनुप्रास की कर्णप्रिय ध्वनि निःसृत हो रही है-

---

[1] द्वादश अनुप्रेक्षा, 4

[2] गोम्मटसार जीवकाण्ड छन्दोदय, 12/97

[3] देव शास्त्र गुरु पूजन, अष्टक, जल छन्द

अरहंत जिनेशं अमित गुणेशं, रचित गणेशं शास्त्र वरं।
वर सूरिपदीशं पाठकईशं, मुनि पद शीशं दौल धरं।।[1]

अनुप्रास के निवेश से सभी रचनाएँ चित्ताकर्षक बन पड़ी हैं। कुछ उदाहरण उल्लेखनीय हैं-

धर्माधीश ऋषीश धर्मकर सो निर्नाश भर्माशया,
कीजै धर्म जिनेश धर्मधर मो जो पर्म शर्माश्रया।।[2]

ह्वै शांती मुनि संत कंत जिन ते मो जंत भैवंत ही,
दीजै शांति महंत शांत पदवी श्रीमंत जैवंत ही।।[3]

जीत्यौ मोह सबल्ल मल्लि जिन सो ह्वै स्वात्म बल्लै धृती,
सो श्री मल्लि अडिल्ल सल्ल दल मो द्यो श्री अकल्लै कृती।।[4]

वसनान असन स्नान सुरभ विधान विविध तरान सै।[5]

अर्थालंकारों में रूपक और उपमा का बाहुल्य है। क्षुधा के लिए नागिन का और नैवेद्य के लिए ग रुड़ का रूपक देकर रूपक अलंकार का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है-

क्षुध फणहिं विहंगमनाथ नेवज सद्यानी।[6]

इसी प्रकार प्रतिवादी के लिए पर्वत का, संशय के लिए अन्धकार का और शास्त्र के लिए वज्रदण्ड व सूर्य का रूपक अत्यन्त प्रभावोत्पादक है-

परवादि महीधर वज्रदंड, संशय तम भंजन मारतण्ड।[7]

रूपक की तरह उपमा अलंकार के प्रयोग में भी वर्णी जी पूर्णत: दक्ष हैं। उनके द्वारा ग्रहण किये गये उपमान असाधारण हैं। उदाहरण के लिए त्रैलोक्य ज्ञेयावली को हस्तरेखांगुली की उपमा अद्भुत है-

जाके केवलज्ञान दर्पण मही त्रैलोक्य ज्ञेयावली,
त्रैकालीय समस्त आय झलकी ज्यौं हस्त रेखांगुली।[8]

---

1 देव शास्त्र गुरु पूजन, जयमाल
2 त्रैलोक्येश चतुर्विंशति जिन स्तोत्र, 17
3 त्रैलोक्येश चतुर्विंशति जिन स्तोत्र, 18
4 त्रैलोक्येश चतुर्विंशति जिन स्तोत्र, 21
5 द्वादश अनुप्रेक्षा, अध्रुव अनुप्रेक्षा
6 रेशिंदि गिरि सिद्धक्षेत्र पूजन, नैवेद्य छन्द
7 देव शास्त्र गुरु पूजन, जयमाल
8 त्रैलोक्येश चतुर्विंशति जिन स्तोत्र, 7

भूमि से पाँच हजार धनुष ऊपर विराजमान शान्तिनाथ भगवान को मार्तण्ड की उपमा अत्यन्त मनोहर है-

तब ही भू से पन सहस दंड, निवसै नभ महिं जिम मारतण्ड।[1]

पूजन के जल को मुनि के चित्त की उपमा भी विस्मयकारी है-

सलिल चित्त मुनी जिम सीयरा, भर हिमी घट धार त्रिदे धरा।[2]

वर्णी जी के साहित्य का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि वर्णी जी एक उच्च कोटि के विद्वान् एवं कवि तो थे ही, ब्रह्मचारी और नियमनिष्ठ व्रती श्रावक भी थे। उनके आत्मानुभवी होने का भी उल्लेख प्राप्त होता है- 'व्रत भाव नाम धर होकैं, विचरौं निज आतम जो कैं।'[3] निस्पृहता उनके अन्दर कूट-कूट कर भरी हुई थी-

अन्य चाह कछु नाहिं मम, व्रत अदोष त्री पाल।
अन्त मरण सल्लेखना, हूजो हे जगपाल।।[4]

इस प्रकार वर्णी जी का कृतित्व ही नहीं, अपितु व्यक्तित्व भी ख्याति-लाभ आदि की चाह से कोसों दूर स्व-पर कल्याण की भावना से लबालब भरा हुआ था।

*****

---

[1] शान्तिनाथ पूजन, जयमाल

[2] शिखर सम्मेद पूजन, जल छन्द

[3] व्रत नियम पोथी, 32

[4] व्रत नियम पोथी, 33

विषय सूची

लेख संग्रह			
क्रमांक	**लेख**	**लेखक**	**पृष्ठ संख्या**
1	बाबा दौलतराम जी, उनका कर्तृत्व और व्यक्तित्व	पं. श्री हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री, ब्यावर	28
2	बुन्देलखण्ड की कुछ जैन विभूतियाँ	पं. श्री हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री, ब्यावर	36
3	बाबा दौलतराम वर्णी कृत छन्दोदय का महोदय	पं. शिवचरनलाल जैन, मैनपुरी	41
4	दौलतरामजी की अज्ञात कृति का जीर्णोद्धार	प्रो. वीरसागर जैन, नयी दिल्ली	53
5	जैन धर्म का दर्पण गोम्मटसार जीवकाण्ड छन्दोदय	डॉ. प्रेमभारती, भोपाल	56
6	बाबा दौलतराम वर्णी, नैनागिरि द्वारा विरचित गोम्मटसार जीवकाण्ड के पद्यानुवाद छंदोदय और उनकी 15 रचनाओं पर समीक्षात्मक विमर्श संस्करण 2020	श्री सुरेश जैन (आई.ए.एस.), भोपाल	59

बाबा दौलतराम वर्णी की रचनाएँ		
क्रमांक	**रचना**	**पृष्ठ संख्या**
1	देव शास्त्र गुरु पूजन	77
2	बीस तीर्थंकर पूजन	80
3	कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालय पूजन	83
4	शान्तिनाथ पूजन	86
5	शिखर सम्मेद पूजन	89
6	पावापुर क्षेत्र संबंधी श्री वीरनाथ स्वामी पूजन	93
7	चंपापुर क्षेत्र संबंधी वासुपूज्य स्वामी पूजन	96
8	रेशिंदि गिरि सिद्धक्षेत्र पूजन	99
9	निर्वाण क्षेत्र पूजन	103
10	त्रैलोक्येश चतुर्विंशति जिन स्तोत्र	106
11	पंच परमेष्ठी स्त्रोत्र	110

12	तरण-तारण जिन स्तोत्र	112
13	द्वादश अनुप्रेक्षा	114
14	ग्यारह प्रतिमाएँ	119
15	व्रत-नियम पोथी	122

बाबा दौलतराम जी, उनका कर्तृत्व और व्यक्तित्व[1]

–पं. श्री हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री, ब्यावर

दिगम्बर जैन समाज में 'दौलतराम जी' के नाम से प्रसिद्ध तीन विद्वान् हुए हैं। इनमें प्रथम दौलतराम जी वसवा (राजस्थान) निवासी खण्डेलवाल जैन थे। इनके जीवन का अधिकांश समय जयपुर नरेश के यहाँ उच्च पदों पर कार्य करते बीता। इन्होंने पद्मपुराण वचनिका, आदिपुराण वचनिका, पुण्याश्रव कथाकोश वचनिका और क्रियाकोश आदि लिखे। कथाकोश की वचनिका वि.सं. 1777 में समाप्त की। क्रियाकोश इनकी स्वतन्त्र रचना है, जिसे उन्होंने वि. स. 1795 के भाद्रपद शुक्ला 12 मंगलवार के दिन बनाकर पूरा किया। हरिवंशपुराण की टीका वि. सं. 1829 में पूरी की। इस प्रकार इनका ग्रन्थ रचना काल वि.सं. 1777 से वि.सं. 1829 तक तो सुनिश्चित है, इनके जन्म और मरण का समय प्रयत्न करने पर भी ज्ञात नहीं हो सका।

दूसरे पं. दौलतराम जी का समय वि. सं. 1855 से लगा कर वि. सं. 1924 तक का माना जाता है। इन्होंने सैकड़ों अध्यात्मिक एवं भक्तिरस परिपूर्ण, उद्‌बोधक भजनों को बनाया। इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना छहढाला है, जो कि वि. सं. 1891 के बैशाख शुक्ला 3 को पूर्ण हुई। ये सासनी, जिला हाथरस (उ.प्र.) के निवासी थे। पल्लीवाल जैन थे और कपड़ों की छपाई करके अति सीमित आय में ही सन्तुष्ट रहते थे।

तीसरे बाबा दौलतराम जो बुन्देलखण्ड के निवासी थे। इनके माता-पिता का नाम, जाति का नाम, तथा जन्म स्थान, जन्म और मरण समय मेरे लिए अज्ञात हैं। ये गोम्मटसार के विद्वान् भावज्ञानी और वैराग्य मूर्ति थे, इसीलिए ये बाबा जी के नाम से बुन्देलखण्ड में प्रसिद्ध रहे हैं। इन्होंने गोम्मटसार जीवकाण्ड की गाथाओं का हिन्दी भाषा के विविध छन्दों में पद्यानुवाद किया है। वृद्धजनों से सुना है कि इनकी भावना जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड दोनों के ही पद्यानुवाद करने की थी। किन्तु जिस दिन गोम्मटसार जीवकाण्ड का पद्यानुवाद समाप्त हुआ, उस दिन कुछ श्रोता लोग उनके समीप बैठे हुए थे। जिस वेष्टन में वे अपनी उक्त रचना बाँधते थे उसकी डोरी को हाथ में ली हुई कैंची से अनजाने में एक व्यक्ति ने बीच में काट दिया। शास्त्र बाँधते हुए जब डोरी अधबीच में कटी पायी तो बोले – संभवत: दैव को मेरी इच्छा अधूरी ही रखनी है और सचमुच कर्मकाण्ड का वे पद्यानुवाद नहीं कर सके, जो कि गोम्टसार का ही उत्तरार्ध या दूसरा भाग है।

[1] सन्मति सन्देश, जनवरी 1971, वर्ष 16, अंक 1 से साभार संकलित।

उपर्युक्त गोम्मटसार जीवकाण्ड की छन्दोबद्ध एक प्रति ऐलक पन्नालाल दिगम्बर जैन सरस्वती भवन, ब्यावर में विद्यमान है। यद्यपि यह प्रति वि. सं. 1990 के श्रावण सुदी 7 शनिवार की लिखी हुई है तथापि जिस प्रति पर से यह लिखी गई है, वह वि.सं. 1959 के आश्विन शुक्ला 4 की लिखी हुई है। उसकी पुष्पिका से ज्ञात होता है कि इसके ही कुछ समय पूर्व बाबा दौलतराम जी ने गोम्मटसार जीवकाण्ड की छन्दोबद्ध रचना पूर्ण की है। वह पुष्पिका इस प्रकार है-

''इस ग्रन्थ की मूल कॉपी की प्रतिलिपि श्री शुभ मिती आश्विन सुदी चौथ विक्रम संवत् 1959 शालिवाहन शक सम्वत् 1924 हिजरी सन् 1319 ई. सन् 1902 में सम्पूर्ण हुई। ऊँ शान्ति।''

दो वर्ष पूर्व मध्यप्रदेश के कुछ प्राचीन शास्त्र भण्डारों को देखते हुए बाबा दौलतराम जी के हाथ की लिखी हुई 8 पत्रों की छोटी सी पोथी मिली। जिसके प्रारम्भ में 2 पत्रों पर ग्यारह प्रतिमाओं का स्वरूप बाबा जी ने हिन्दी छन्दों में लिखा है। उसके पश्चात् 3 पत्रों में अपने द्वारा धारण किए गए व्रत-नियमों का विवरण छन्दोबद्ध किया है अन्त में जो दोहा दिया है, उससे उक्त व्रत-नियम छन्द वि. सं. 1961 के पौष सुदी 15 में लिखे ज्ञात होते हैं। इस लेख से उपरि लिखित गोम्मटसार जीवकाण्ड के अन्तिम लेख की पुष्टि होती है कि वह प्रति बाबा जी के जीवनकाल में ही लिखी गयी है। गोम्मटसार जीवकाण्ड के अन्त में बाबा जी ने जो प्रशस्ति दी है वह इस प्रकार है-

(चौपाई)

करणाटकि वृत्ती अनुसार, केशव वर्णी भव्य विचार।
संस्कृत टीक रची सुखदाय, टोडरमल्ल लेय तसु छाय।।
भाषा टीक करी मैं दोय, वृत्तिन में से अर्थहिं जोय।
गााथा मूल अर्थ के सार, बाँधे छन्द स्व मति अनुसार।।
जैसौ अर्थ जु टीका माँह, अरु जिस भाँति समझ मो आँह।
सो सब कहो न यन्त्र तनेय, अरु संदृष्टिक छन्द रचेय।।
जो हुय छंद अर्थ महिं भूल, सोधहु सुधी देखि श्रुत मूल।
गाथारथ अवधारन काज, सुगम रीति कीनी हित साज।।

(सवैया इकतीसा)

गाथा मूल माँहि अर्थ विशेष न समुझाँहि,
तातैं अर्थ अवधारनें का लोभी थाय के।
अथवा स्व शिष्य ताके पढ़ावन काजु यह,
कर दियो प्रारम्भ गुरूपदेश पाय के।

क्रीडन के ताल सम मैं वरणी दौल बाल,
जान श्रुतसागर मैं पर्यो उमगाय के,
सो अब लघु धी पाय शारद थारी शरण,
आय गयो आधे पार विलम्ब विहाय के।। 37।।

(चौपाई)

भवि जन सो मन हर्ष धर, पढहु पढ़ावहु सार।
जिन गाथार्थ विगाह सर, होहु श्रुतोदधि पार।।38।।

उक्त प्रशस्तिगत सवैया के चतुर्थ चरण से भी प्रकट है कि बाबा दौलतरामजी जीवकाण्ड की छंदोबद्ध रचना कर चुकने के बाद आगे कर्मकाण्ड की भी रचना का भाव रखने के कारण 'आय गयो आधे पर' कह रहे हैं। पर यह जैन समाज का दुर्भाग्य रहा कि वे अपनी भावना को पूर्ण नहीं कर सके।

ऐलक सरस्वती भवन में जो प्रति छन्दोबद्ध जीवकाण्ड की विद्यमान है उसका आकार 10×6 इंच है। पत्र संख्या 158 है। प्रति पृष्ठ पंक्ति संख्या 10 है और प्रति पंक्ति अक्षर संख्या 36-37 है। इस प्रकार उनकी यह छंदोबद्ध रचना लगभग चार हजार श्लोक प्रमाण है। गोम्मटसार जीवनकाण्ड की गाथा संख्या 733 है। बाबाजी ने प्रारम्भ में अनेक छेदों के द्वारा गोम्मटसार का परिचय दिया है और प्रायः सभी गाथाओं पर भी संस्कृत टीका के आश्रय से गाथा के अर्थ का स्पष्टीकरण किया है, जिससे कि उनकी रचना का प्रमाण बढ़ना स्वाभाविक ही है।

यहाँ पर हम उनकी रचना के दो-एक अंश दे रहे हैं, जिससे पाठक उनकी रचना-शैली से अवगत हो सकेंगे-

मंगलाचरण

(गाथा)

सिद्धं सुद्धं पणमिय, जिणिंदवरणेमिचंदमकलंकं।
गुणरयणभूसणुदयं, जीवस्स परूवणं वोच्छं।।1।।

(दोहा)

गुण मणि भूषण उदय वर, नेमिचन्द जिनराय।
सिद्ध सुद्ध अकलंक नमि, कहुँ जिय प्रूपण गाय।।1।।

(गीतिका)

गुणरत्न भूषण उदय जुत श्री सिद्ध शुद्ध जिनेन्द्र जी,
वर नेमिचन्द कलंक बिन चौबीस वा तीर्थेन्द्र जी।

अथवा श्री जिनवीर वा श्री सिद्ध वा सुसमय सही,
वा सर्व सिद्ध समूह अथवा प्ररूपण जिसकी कही।।2।।

(चौपाई)

वा श्री नेमिचन्द्र वर सूर, सब ही पूर्व कथित गुण पूर।
तिन जुग चरणाम्बुज शिर नाय, जीव प्ररूपण कहौं सु गाय।।3।।

आगैं श्रुतज्ञान का अक्षर समास ज्ञान को कहैं हैं-

(गाथा)

एयवखरादु उवरिं, एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो।
सखेज्जे खलु उड्ढे, पदणामं होदि सुदणाणं।। 334।।

(चौपाई)

इक अक्षरज ज्ञान ऊपरै, इक इक वर्णहिं वर्धत खरै।
वरण संख वृद्धी में होय, पद नाम श्रुतज्ञान जु सोय।।

आगैं अनाकर उपयोग का स्वरूप कहैं हैं-

(गाथा)

इंदियमणोहिणा वा अत्थे, अविसेसिदूण जं गहणं।
अन्तोमुहुत्तकालो, उवजोगो सो अणायारो।। 674।।

(गीतिका)

नेत्र इन्द्रिय रूप चक्षु अचक्षु शेष करण पुना,
मन रूप वा दर्शन अवधि इनसे जियादि पद न तना।
हृत विशेष रु विकलप विमुक्त जु ग्रहण है सामान्य ही,
सो अन्त मुहुरत मात्र थिति, धृत निराकर कहा नहीं।।

बाबा दौलतरामजी के व्यक्तित्व का पता उनके द्वारा स्वीकृत व्रतों के नियमों से लगता है कि आप श्रावक के 12 व्रतों के धारक थे। वे कितने स्वल्प सन्तोषी थे, इसके लिए उनके परिग्रह-परिमाण-व्रत पर दृष्टिपात कीजिए - वस्त्र 15 गज प्रमाण, दो चटाई के आसन (एक छोटा बैठने का, एक बड़ा सोने का) एक जल की चरी मय ढक्कन के, शास्त्रों की पेटी और कार्ड-लिफाफे आदि 4 आना तक के (उस समय 1

पैसे में कार्ड और 2 पैसे में लिफाफा था)। कितना सीमित परिग्रह है - पन्द्रह गज में धोती, ओढ़ने का चादर आदि सब कुछ शामिल है। ज्ञात होता है कि वे जब घर से उदासीन होकर व्रती श्रावक बने, तब उक्त परिग्रह के अतिरिक्त सर्व परिग्रह का त्याग कर दिया था, जिसे वे अपने नियमों के चौथे छंद में स्पष्ट रूप से उल्लेख कर रहे हैं - 'यह अन्य ग्रहण नहिं चाहूँ।'

उनका दिग्व्रत-परिमाण भी कितना सीमित है - उन्होंने पूर्व दिशा में बुन्देलखडस्थ सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर (जो कि दमोह जिले के भीतर है) से लेकर उत्तर दिशा में पपौरा तक, वहाँ पश्चिम दिशा में ललितिपुर, सीरोन होते हुए थूबौन जी अतिशय क्षेत्र तक, पुनः दक्षिण में बीना होते हुए टड़ा (सागर) होते हुए वापस कुण्डलपुर तक की क्षेत्र मर्यादा रखी है। इससे ज्ञात होता है कि उक्त मर्यादा करने के पूर्व वे सम्मेदशिखर गिरनार आदि सिद्ध-क्षेत्रों की वन्दना कर आये थे। उक्त दिग्व्रत मर्यादा में केवल एक अपवाद रखा था कि यदि धर्मकार्य वश जाना पड़े, तो पर-प्रेरित होने पर ही जाऊँगा, अन्यथा नहीं।

उनका भोगोपभोग परिमाणव्रत भी देखिए - 1. गेहूँ, 2. चावल और 3. मूँग इन तीन अन्नों के सिवाय सर्व अन्नों का त्याग 4. हरी मेंथी और 5. सेम के सिवाय सर्व शाक-भाजियों का त्याग, 6. सूखी आँवला-करी, 7. सूखा अमचूर, 8. घी, (जैनी के यहाँ का मर्यादा से बना) 9. सेंधा नमक 10. दाख, 11. जीरा, 12. लौंग, 13. मेंथी, 14. अजवाइन और 15. पानी इन पन्द्रह वस्तुओं के सिवाय सर्व प्रकार के भोज्य पदार्थों का त्याग कर दिया था। छह रसों में से एक ही रस ग्रहण का नियम रखा था। प्रासुक जल-पान और प्रासुक जल से ही स्नान, शौच और वस्त्रादि धोने का भी नियम था। सचित्त सवारी का भी त्याग कर दिया था। उनके द्वारा स्वीकृत व्रत-नियम उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार हैं-

(दोहा)

प्रणमि पंच परमेष्ठि जिन, चैत्य-सद्म वृष वानि।
बाँध छंद निज नियम के, लिखूँ स्व हित पहिचानि।।1।।

(चौपाई)

अशन करूँ जिन चैत्य निहार, मूल अष्ट सब अभख निवार।
व्यसन टाल बुधि गत दृग दोष, हन सुमरों वसु अंग अदोष।।2।।
अणुव्रत पन पन पन अतिचार, विगत स्व चित गत पालों सार।
उपधि पंचदश गज पट जान, चरु दुकटासन वाटकि मान।।3।।
पेटी शास्त्रनि की इक सही, कारटादि चतु आना तहीं।
यह रख अन्य ग्रहण नहिं चहूँ, जिहिं खित माँहिं वरन सो कहूँ।।4।।

(अडिल्ल)

कुण्डलपुर सैं क्षेत्र पपौरा जाय कैं, लौट ललितपुर मार्ग सिरोंने आयकैं।

क्षेत्र वंदि थूबौन वाट बीना घरै, ग्राम टड़ा हो कुण्डलाद्रि मधि व्योहरैं।।5।।

(चौपाई)

इन मग बाह्य क्षेत्र में कहीं, बिन पर-प्रेरित जैहों नहीं।

देश-सीम नित प्रति चित धरौं, भुक्ति कथा कहुँ अब जिम भरौं।।6।।

गेहूँ तन्दुल मूँग विधान, जीरौ द्राक्ष लवँग अजवान।

मैंथि दुसैमा उर अमकरी, घृत सेंधव जल पनदश खरी।।7।।

(दोहा)

इन मँहि सुद्ध अजीव धुत, तप्त पंच जन थान।

निरखि क्षुधामय यूत जल जैनिहि पान।। 8 ।।

दिन पय छान तपाय नव, जामन दिय वसु जाम।

प्रथमहिं मक्खन काढकैं, तप्त तुरत कर काम।।9।।

(चौपाई)

जामैं छाँछ नीर जल जाय, छान धरै सो जतन कराय।

तिहिं मरयाद फिरन रँग मही, जो सछाँछ ह्वै तसु दिन वही।।10।।

पीसै खनै दलै दिवसेह, आटा तन्दुल दाल त्रि एह।

जैनिहि चाकी कर अति साफ, शुचि तन आटौ पीसै आप।।11।।

सो जो यतन थकी राखेव, तौ दिन सप्त पंच त्रय सेब।

रस दिन एक-एक ही पाम, न सबल गात लवन मो काम।।12।।

(दोहा)

कुगुरू कुदेव कुधर्म रुचि, व्यसनि चिलमयी टारि।

औ पनमास गरभघृती, त्रिय बिन अन नर-नारि।।13।।

(चौपाई)

सित पट धौत नहुन कर वारि, लाख चूड़ि कर मुदरी टारि।

थान रसोई पट क्षत तान, करै अतरु वेलन द्युत थान।।14।।

सो मैं लहुँ लख दूषण बिन ही, लहुँ न लवन घृत रवि बुध महीं।

मास त्रि बिन दुति वार अरवार, असृत पान करूँ न लगार।।15।।

सबल खार इक रस जल वृत्त, खनय पटेंदु शरद तक मित्त।
चरु विलियास निकट पट मुक्त, तजे बुद्धि मम धर उपभुक्त।।16।।
कागज कलम रँगादि सपात, रै हैं कछु मम संग विख्यात।
अनरथ दंड स्व चितगत भान, शिक्षा व्रतहिं धरौं उर थान।।17।।
काल त्रि सामायिक लघु करौं, शक्ति स्वमित प्रोषध व्रत धरौं।
षोडस पहर बाह्य पुर कहीं, बिन हित शौच जानकौं नहीं।।18।।
सचित त्याग कर प्रासुक वार, वरतों सब ही कार्य मँझार।
तज निशि भुक्त वचन मन काय, कृत कारित अनुमत से भाय।।19।।

(चाल)

व्रत ब्रह्मचर्य सुखदाई, हनके त्रिकरण दुचिताई।
ऊनोदर बिन सह वाडी, पालौं चित वृत्तहिं ताडी।।20।।
आरम्भ अल्प बहु दोई, तज वरतौं त्रस वध खोई।
पर-प्रेरित अचित सवारी, अरु रुगि तन जन बिन सारी।।21।।
परिहान पग न गत ठानी, विचरौं कृत दिग्व्रत थानी।
कोइ लैन बाह्य जन आई, जैहूँ हेतू वृष चाई।।22।।
मग में जो गाम लहाऊँ, तहँ दिन चतुताहि रहाऊँ'।
अरु जो रुग वशि हो जैहौं, तौ बिन मित काल रहैंहौं।।23।।
प्राविड बिन इक पुर माँहीं, रहुँ मास दुसे बहु नाहीं।
तन औषध निंद्य सचित्ती, मरदौं न हरण रुग हित्ती।।24।।
लघु मोल जलादि बिहाई, याचूँ न पदार्थ कदाई।
अर्थादि बिना व्रत-हीनों, न कहूँ विकथा वच दीनों।।25।।
निशि जिनगृह तज अनथानी, बोलूँ बिन कार्य न वानी।
विधि युक्त बुलाये धामी, हन रहस असन भुगतामी।।26।।
बिन बुधिगत दूषण लागै, वश मो न कछू तिहिं जागै।
जिन सिद्ध सूरि उवझाई, सब साधुन कौं सिर नाई।।27।।
यह अरजि करौं कर जोरी, सुनियो करूणानिधि मोरी।
मैं भ्रमि चिर भव वन माँहीं, भुगते दुख घोर सदाहीं 28।।
कबहूँ कछु सुकृत करिकैं, लिय शर्म अमर पद घरकैं।

जिन लिंग द्रव्य कहुँ धारी, लिय ग्रैवेयक अवतारी।।29।।
कभुँ जिन वृष भंज कथाई, भोगे दुख श्वाभ्र अमाई।
झलकैं तुम ज्ञान मँझारी, सो सो सब ही त्रिपुरारी।।30।।
अब या भव औमर पाई, पायो कछु व्रत सुखदाई।
लघु-लघू दोष जो कोई, लागे तुम जानत सोई।।31।।
ते होय मृषा सब स्वामी, दुग युक्त फलौ मम कामी।
व्रत भाव नाम धर होकैं, विचारौं निज आतम जो कैं।।32।।

(दोहा)

अन्य चाह कछु नाहिं मम, व्रत अदोष त्री पाल।
अन्त मरण सल्लेखना, हूजो हे जगपाल।।33।।
अवधी पति जीवन प्रती, कहत वचन मद टार।
नियम अधिक कम देख मम, करौ न स्वचित विचार।।34।।
पूरव कृत कछु नियम मम, कछु पदार्थ रुग गात।
जनक जानकिय त्याग कछु, करन करण मद घात।।35।।
जनपद बागड़ वेगपुर, रह्यो मास इक आय।
निमित स्व देशन वृद्धि वृष, आकर तहँ चित लाय।।36।।
विधु कुलगिरि हरि नियत वृष, पौष धवल दिनअन्त।
लिखे छंद निज दौल यह, करन कण्ठ हित सन्त।।37।।

उपर्युक्त व्रत-नियमों के देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि बाबा जी ने वि. सं.1961 के पौष सुदी 15 के पूर्व ही अनावश्यक सर्व प्रकार का परिग्रह भार उतार कर फेक दिया था और बागड़ प्रांत से वे शीघ्र ही स्वदेश (बुन्देलखण्ड) लौट आये। उनकी परम उदासीनता एवं वैराग्यमय तपोवृत्ति की चर्चा बचपन में अपने गुरूजनों से अनेक बार सुनी है। ऐसे सन्तों को सहस्त्र बार नमस्कार है।

बुन्देलखण्ड की कुछ जैन विभूतियाँ[1]

–पं. श्री हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री, ब्यावर

दिगम्बर जैन समाज में 'दौलतराम जी' के नाम से प्रसिद्ध तीन विद्वान् हुए हैं। इनमें प्रथम दौलतराम जी वसवा (राजस्थान) निवासी खण्डेलवाल जैन थे। इन्होंने पद्मपुराण, पुण्याश्रव कथाकोश आदि ग्रन्थों की भाषा वचनिकाएँ लिखी हैं तथा मौलिक ग्रन्थ क्रियाकोश की रचना की है। इनकी रचनाएँ वि.सं. 1777 से वि.सं. 1829 तक पायी जाती हैं। दूसरे पं. दौलतराम जी हैं, जिन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ छहढाला की रचचना वि. सं. 1891 की बैशाख शुक्ला 3 को पूर्ण की है। इसके अतिरिक्त इन्होंने सैकड़ों अध्यात्मिक, उपदेशी एवं हजूरिया भजनों की भक्तिपूर्ण रचना भी की है। इनका समय वि. सं. 1855 से लगाकर 1924 तक माना जाता है। आप सासनी, जिला हाथरस (उ.प्र.) के रहने वाले थे। पल्लीवाल जैन थे और कपड़ों की छपाई करके अति सीमित आय में ही सन्तुष्ट रहते थे। तीसरे बाबा दौलतराम जी हैं, जो कि बुन्देलखण्ड के निवासी थे। इनके जाति, वंश, जन्म-स्थान और मरण-समय आदि मेरे लिए अज्ञात हैं। ये अत्यन्त उदासीन और वैराग्य वत्ति के धारक महान विद्वान थे। इन्होंने सिद्धान्त ग्रन्थ गोम्मटसार जीवकाण्ड की गाथाओं का हिन्दी भाषा के विविध छन्दों में पद्यानुवाद किया है। इसकी जो प्रति ऐलक पन्नालाल दिगम्बर जैन सरस्वती भवन, ब्यावर में विद्यमान है उसमें इसकी रचना का समय इसप्रकार दिया है–

इस ग्रन्थ की मूल कापी की प्रतिलिपि श्री शुभ मिति आश्विन सुदी 4 विक्रम संवत् 1959 शालिवाहन शक संवत् 1824 हिजरी सन् 1319 ई. सन् 1902 में सम्पूर्ण हुई।

इनके प्रत्यक्षदर्शी लोगों से बचपन में मैंने इनकी त्याग वृत्ति की अनेक गुण-गाथाएँ सुनी हैं। इन्होंने अनेक चौमासे बमराना (झाँसी) में किये हैं और अपने सीमिक दिग्व्रत के अनुसार जीवन के अन्तिम दिन बुन्देलखण्ड में ही व्यतीत किये हैं।

इनके व्रत-नियमों की छोटी-सी पोथी जो उपलब्ध हुई है, उसमें 37 छन्दों के द्वारा उनके नियमोपनियमों की विस्तृत जानकारी मिलती है। उसे अविकल रूप से 'सन्मति सन्देश' के वर्ष के प्रथम अंक में प्रकाशित किया गया है, जिसका सार इतना है कि श्रावक के 12 व्रतों के धारी थे। उनका परिग्रह-प्रमाण वस्त्र ओढ़ने पहरने के 15 गज प्रमाण, 2 आसन चटाई के, 1 जल की चरी मय ढक्कन के, शास्त्रों की 1 पेटी और 4 आना के पोस्टकार्ड। उनका दिग्व्रत पूर्व में बुन्देलखण्डस्थ कुण्डलपुर सिद्धक्षेत्र, उत्तर में पपौरा, पश्चिम में ललितपुर, सीरोन होते हुए चन्देरी थूबौन जी और दक्षिण में बीना-टड़ा (सागर) होते हुए वापस कुण्डलपुर तक।

[1] क्षुल्लक चिदानन्द स्मृति ग्रन्थ से साभार संकलित।

उनके भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रत को भी देखिए- गेहूँ, चावल और मूँग के सिवाय सभी अन्नों का त्याग, हरी मेंथी और सेम के सिवाय सभी शाक-भाजियों का त्याग, सूखा आँवला, सूखा अमचूर, आठ पहर का घी, सेंधा नमक, दाख, जीरा, लौंग, मेंथीदाना, अजवाइन और पानी इन 15 वस्तुओं के सिवाय सर्व प्रकार के भोज्य पदार्थों का त्याग था। छहों रसों में से एक दिन में एक ही रस के लेने का नियम था। अपने सभी कार्यों में सीमित ही प्रासुक जल का उपयोग करते थे। सचित्त सवारी का भी त्याग था।

यहाँ पर उनके गोम्मटसार जीवकाण्ड छन्दोबद्ध रचना से दो उदाहरण दिये जाते हैं-

अक्षर समास और पद श्रुतज्ञान का स्वरूप-

गाथा

एयक्खरादु उवरिं, एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो।
सखेज्जे खलु डड्ढे, पदणामं होदि सुदणाणं।।334।।

चौपाई

एक अक्षरज ज्ञान ऊपरै, इक इक वर्णहिं वधते खरै।
वरण संख वृद्धीयें होय, पदनाम श्रुतज्ञान जु सोय।।

अनाकार उपयोग का स्वरूप-

गाथा

इंदियमणोहिणा वा, अत्थे अविसेसदूण जं गहणं।
अंतोमुहुत्तकालो उवजोगो सो अणायारो।।674।।

गीतिका

नेत्र इन्द्रिय रूप चक्षु अचक्षु शेष करण पुना,
मन रूप वा दर्शन अवधि इनसे जियादी पद तना।
हृत विशेष रु विकलप-विमुक्त जु ग्रहण है सामान्य ही,
सो अन्तमुहुरत मात्र थिति धृत निराकार कहा सही।।

बाबा दौलतराम जी की इच्छा गोम्मटसार कर्मकाण्ड के भी पद्यानुवाद करने की थी, पर हम लोगों के दुर्भाग्य से वह पूरी नहीं हो सकी।

बाबा जी की उक्त नियम-पोथी के प्रारम्भ में ग्यारह प्रतिमाओं का स्वरूप भी छन्दोबद्ध किया गया है। उनकी यह रचना अभी तक अप्रकाशित है, अतः यहाँ पर क्षुल्लक चिदानन्द जी महाराज की स्मृति में प्रकाशित किया जाता है-

ग्यारह प्रतिमाएँ

(दोहा)

प्रणमि पंच परमेष्ठि पद, जिन आगम अनुसार।
श्रावक प्रतिमा एकदश, कहुँ भविजन हितकार।।1।।

(सवैया इकतीसा)

श्रद्धा कर व्रत पालै सामायिक दोष टालै,
पोसौ मांड सचित्त कौं त्याग लौं घटायके।
रात्रि भुक्ति परिहरै ब्रह्मचर्य नित धरै,
आरंभ कौ त्याग करै मन वच काय के।।
परिग्रह काज टारै अघ-अनुमत छारै,
स्वनिमित्त-कृत त्यागै अनशन बनायके।
सब एकादश येह प्रतिमा जु शर्म गेह,
धारै देशव्रती उर हरष बढ़ायके।।2।।

1. दर्शन प्रतिमा

(चौपाई)

अष्ट मूलगुण संग्रह करै, विषम अभक्ष सबै परिहरै।
श्रुत अष्टांग शुद्ध सम्यक्त्व, धरहि प्रतिज्ञा दरशन रक्त।।3।।

2. व्रत प्रतिमा

(चौपाई)

अणुव्रत पन अतिचार विहीन, धारहि जो पुन गुणव्रत तीन।
शिक्षाव्रत चतु संयुत सोय, व्रत प्रतिमा धर श्रावक होय।।4।।

3. सामायिक प्रतिमा

(गीतिका)

सब जियन में समभाव धर शुभ भावना संयम मही,
दुरध्यान आरत रौद्र तजकर त्रिविध काल प्रमाण ही।
परमेष्ठि पन जिन वचन जिन वृष बिम्ब-जिन जिन-गृह तनी,
वन्दन त्रिकाल करह सुजानहु भव्य सामायिक धनी।।5।।

4. प्रोषध प्रतिमा

(पद्धरि)

वर मध्यम जघन त्रिविध धरेय, प्रोषध विधि युत निज बल प्रमेय।
प्रतिमा सु चार पर्वी मँझार, जानहु सो प्रोषध नियम धार।।6।।

5. सचित्त-त्याग प्रतिमा

(चौपाई)

जो परिहरै हरीं सब चीज, पत्र प्रवाल कंद फल बीज।

अरु अप्रासुक जल भी सोय, सचित-त्याग प्रतिमा धर होय।।7।।

6. रात्रिभुक्ति-त्याग प्रतिमा

(अडिल्ल)

मन वच तन कृत कारित अनुमोदै सही,

नवविध मैथुन दिवस माँहिं जो वर्जही।

अरु चतुविध आहार निशा माहीं तजै,

रात्रिभुक्ति परित्या प्रतिज्ञा सो सजै।।8।।

7. ब्रह्मचर्य प्रतिमा

(चौपाई)

पूर्व उक्त मैथुन नव भेद, सर्व प्रकार तजै निरखेद।

स्त्रि-कथादिक भी परिहरै, ब्रह्मचर्य प्रतिमा सो धरै।।9।।

8. आरम्भ-त्याग प्रतिमा

(चौपाई)

जो कछु अल्प-बहुत अघ काज, गृह संबंधी सो सब त्याज।

निरारम्भ ह्वै वृष-रत रहै, सो जिय अष्टमि प्रतिमा वहै।।10।।

9. परिग्रह-त्याग प्रतिमा

(चौपाई)

वस्त्र मात्र रख परिग्रह अन्य, त्याग करै जो व्रत सम्पन्न।

ता में पुन मूर्छा परिहरै, नवमी प्रतिमा सो भवि धरै।।11।।

10. अनुमति-त्याग प्रतिमा

(चौपाई)

जो पुमान अघमय उपदेश, देय नहीं पर कों लवलेश।

अरु तसु अनुमोदन भी तजै, सो ही दशमी प्रतिमा भजै।।12।।

11. उद्दिष्ट-त्याग प्रतिमा

(चौपाई)

ग्यारम थान भेद हैं दोय, इक क्षुल्लक इक ऐलक सोय।

खंड वस्त्र धर प्रथम सुजान, युत कौपीनहिं दुतिय पिछान।।13।।

ये गृह त्याग मुनिन ढिंग रहैं, वा मठ मन्दिर में निवसहैं।

उतरत दंड उचित आहार, करहिं शुद्ध अंत्राय निवार।।14।।

(दोहा)

हम सब प्रतिमा एकदश, दौल देशव्रत थान।

ग्रहै अनुक्रम मूल सह, पालै भवि सुख दान।।15।।

उक्त प्रतिमा स्वरूप वर्णन के पश्चात् बाबा जी ने अपने स्वीकृत व्रत-नियमों को 37 छन्दों में निबद्ध किया है। उनसे ज्ञात होता है कि उनका आचार-विचार नवीं प्रतिमाधारी जैसा था। उन्होंने सचित्त सवारी के साथ जूते पहरने का भी त्याग कर दिया था। रात्रि में जिन मन्दिर में शास्त्र-सभा के सिवाय बोलने का भी त्याग कर दिया था।

बाबा जी के विषय में अनेक जनों से सुना था कि वे भाव-देशसंयमी थे। इस बात की पुष्टि उनके इस वचन से भी होती है-

व्रत भाव नाम-धर होकें, विचरौं निज आतम जोकैं।

अपने नियमों का उपसंहार करते हुए उन्होंने लिखा है-

अन्य चाह कछु नाहिं मम, व्रत अदोष ति-पाल।

अन्त मरण सल्लेखना, हूजै हे जगपाल।।33।।

अपने व्रतों का उक्त विवरण वि. सं. 1961 के पौष सुदी 15 के दिन छन्दोबद्ध किया है। यथा-

विधु कुलगिरि हरि नियत वृष, पौष धवल दिन अंत।

लिखे छंद निज दौल यह, करन कंठ हित संत।।37।।

इस पद्य से ज्ञात होता है कि वि. सं. 1961 के पूर्व ही उन्होंने अपने उक्त व्रतों को धारण कर रखा था। इस समय के पश्चात् वे कब तक जीवित रहे, इसका निश्चित पता हमें नहीं है, फिर भी उनके इससे आगे 5-7 वर्ष जीते रहने की सम्भावना अवश्य है।

ऐसे भावज्ञानी, भावसंयमी सन्तों को मेरा सहस्र बार नमस्कार है।

बाबा दौलतराम वर्णी कृत छन्दोदय का महोदय

– पं. शिवचरनलाल जैन

मंगल

नमामि सर्वदा शिरसा नेमीशतीर्थङ्करम्।
गोम्मटेशं जिनं वन्दे, प्रथममोक्षगामिनम्।।1।।
सिरि णेमिचन्द सूरिं, भत्तिब्भर हियएण सया णौमि।
सिद्धांतचक्कवट्टिं, गोम्मटसंगह सु सुत्तकत्तारं।।2।।
छन्दोदय अनुवाद के, कर्त्ता दौलतराम।
वर्णी विषय विरक्त यति, कविवर को सु प्रणाम।।3।।
छन्दोदय प्रकटीकरक, नैनागिरी सुरेश।
लब्ध प्रतिष्ठ वरिष्ठ नित, पायें सुयश विशेष।।4।।

–स्वोपज्ञ

गोम्मटसार

जैन वाङ्मय में करणानुयोग की गणित विद्या को अन्तस् में समाहित किए द्रव्यानुयोग का ग्रन्थ गोम्मटसार जीवकांड-कर्मकांड एक चामत्कारिक रचना है। सिद्धान्त चक्रवर्ती श्री नेमिचन्द्र आचार्य ने जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष एवं पुण्य-पाप के उत्कृष्ट गणितीय परिप्रेक्ष्य में भौतिक तुला के समान पद्धति से षट्खंडागम के जीवस्थान, क्षुद्रक बंध, बन्ध स्वामित्व, वेदनाखंड एवं वर्गणा खंड (तथा यत्किञ्चित महाबन्ध) के विषय को धवला टीका के आधार से इस शिरोमणि ग्रंथ की कौशल के साथ प्रस्तुति की है। ग्रंथ प्रणयन के निमित्त और हेतु, विन्ध्यगिरि पर विराजमान भगवान गोम्मेटेश्वर श्रवणबेलगोला के निर्माता उनके प्रिय, एकनिष्ठ शिष्य चामुण्डराय थे। 734 (735) प्राकृत गाथाओं में विस्तृत, अत्यंत सुगठित विषयबद्ध जिनवाणी का यह प्रतिनिधि ग्रंथ ही बना हुआ है। प्राकृत में जीवकांड पर बाबा दौलतराम वर्णी कृत पद्यानुवाद अपेक्षित है। इसमें ओघ (उपदेश) और आदेश रूप गुणस्थान एवं मार्गणस्थानों पर अपेक्षित विषय समायोजित है।

बाबा दौलतराम वर्णी

समाज के लिए तो यह एक नवीन नाम ज्ञात हुआ है। अनेक वर्णी बहु विश्रुत हुए यथा- दीपचंद वर्णी, भगीरथ वर्णी, आध्यात्मिक संत गणेश प्रसाद वर्णी, जिनेन्द्र वर्णी आदि। पर हमारे लक्ष्य बिन्दु हैं बाबा दौलतराम वर्णी। माननीय सुरेश जैन (आई.ए.एस.) ने भगीरथ प्रयत्न कर उनको लोक मानस में

प्रतिष्ठित किया है। बाबा जी विपुल वर्ण संग्रह के धनी वर्णी थे, ब्रह्मचारी के रूप में वर्णी थे, श्रेष्ठ वर्णज होने से भी वर्णी थे। उनके पद्यानुवाद के सुगठित रूप की दृष्टि से देखा जाए तो प्रतीत होता है कि उनको सोचना भी न पड़ता होगा, अपितु अनेक प्रकार के मनोहर विविध वर्ण उनके सम्मुख आकर मानो निवेदन करते होंगे कि हमें प्रयोग करो, हमें प्रयोग करो। वे एक स्वाभाविक अनुभवी छन्द विज्ञानी होने के कारण, काव्य रचना उनके लिए लाघवास्पद थी। उनका व्यक्तित्व अत्यंत श्रद्धालु, विशुद्ध भाववान, मार्दवी, प्रखरज्ञानी था। वे घाट-घाट का पानी पीने वाले घुमक्कड़ बाबा सिद्ध होते हैं। यद्यपि नैनागिरि के सुरम्य-प्रकृति वरदत्त स्थल पर उन्होंने छन्दोदय की रचना की थी, फिर भी उन्होंने ब्रज भाषा का भी प्रयोग किया, इससे प्रकट है कि वे तत्कालीन विद्याकेन्द्र आगरा, मथुरा, जयपुर क्षेत्रों में भ्रमण कर धर्म प्रभावना एवं साहित्य साधना करते होंगे। लोक प्रिय व्यक्तित्व के धनी भाई श्री सुरेश जैन, (आई.ए.एस.) ने नव प्रकाशित गोम्मटसार जीवकांड छन्दोदय के आमुख में उनका परिचय, साहित्य का परिचय व छन्दोदय प्रकाश में आने का जो वृतान्त वर्णित किया है, उससे पूरा वृतान्त अवगम्य है। बड़े आदर एवं रुचि के साथ भाई सुरेश जी के पिता श्री ने पांडुलिपि प्राप्त कर स्वयं अध्ययन किया तथा उनको भी सम्यक् रूप से ग्रंथ विराजमान कर स्वाध्याय की प्रेरणा दी थी।

गणेश प्रसाद जी वर्णी द्वारा जीवन गाथा में बाबा दौलतराम का जिक्र किया गया है। इससे स्पष्ट है कि बाबा वर्णी जी एक लोक हितैषी, प्रखर प्रज्ञा पुंज एवं सम्यग्दर्शन के अष्टांग पालक भक्त कवि थे। उन्होने सन् 1902 में नैनागिरि में प्रथम पाठशाला स्थापित की थी, यह इस बात का प्रतीक है कि वे ज्ञान प्रसारकवर्य थे। मनीषी के साथ हितैषी होना, यह सोने में सुगंध है। निम्न पंक्तियाँ उनके विषय में सटीक चरितार्थ होती है -

मनीषिणः सन्ति न ते हितैषिणः,
हितैषिणः सन्ति न ते मनीषिणः।
सुहृच्च विद्वानपि दुर्लभो नृणां,
यथौषधं स्वादु हितं च दुर्लभम्।।

जो मनीषी हैं, वे हितैषी नही हैं, जो हितैषी हैं वे मनीषी नही हैं। मित्र हो, हितैषी हो और विद्वान् भी हो, यह मनुष्यों में दुर्लभ है। जैसे औषधि सुस्वादु हो तथा हितकारी हो, वह दुर्लभ है।

सौम्यमूर्ति सुरेश जी

लगभग चार दशकों से सामाजिक परिदृश्य में प्रकट हुए व मेरे भाव में एक उदीयमान नक्षत्र की भाँति अपना स्थान बनाते हुए नैनागिरि सिद्ध क्षेत्र के क्षेत्रपालक स्वरूप माननीय भैया सुरेश जी (आई.ए.एस.) एक अत्यंत स्पृहणीय व्यक्तित्व के धनी हैं। वरिष्ठ प्रशासनिक सेवा से सम्मान सहित निवृत

होकर वे वर्तमान में समाज की उन्नति के लिए ही जीवन जी रहे हैं। भोपाल में उन्होने विद्यासागर इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट की स्थापना की। इससे उनके मार्गदर्शन का भरपूर लाभ उठाकर सैकड़ों उच्च शिक्षित नव युवकों ने श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर व श्रेष्ठतम पदों के कार्यभार ग्रहण कर राष्ट्र के कीर्तिमान स्थापित किए हैं। इस विषय में समाज उनका ऋणी है। वे खोज-खोजकर वात्सल्य भावना से शिक्षार्थियों को स्थान देते हैं।

यह भी मणि-कांचन संयोग है कि उनकी सहधर्मिणी न्यायमूर्ति श्रीमती विमला जी जैन न्यायक्षेत्र में अपनी श्रेष्ठ न्यायपरक सेवाएँ प्रदान कर सम्प्रति भाई सुरेश जी के साथ कंधे से कंधा मिलाकर अभिलषित कार्य में संबल प्रदान कर रही हैं। वे भी साहित्य के सृजन में लग्नशील हैं। उनके आलेख सामयिक रूप से प्रकाशित होकर दिशाबोध दे रहे है। धन्य है यह जोड़ी!

भाई सुरेश जी बहुआयामी साहित्यकार भी है। वे वक्ता, लेखक, देव-शास्त्र-गुरु भक्त, समाज हितचिन्तक व सबके अपने हैं। परोपकार समाज सेवा के लिए सदैव तत्पर रहकर मानवीय गुणों से सुशोभित धार्मिक जीवन जी रहे हैं। मार्दव, क्षमा एवं आर्जव पूर्ण व्यक्तित्व के धनी हैं। इसमें सिद्ध क्षेत्र नैनागिरि की सन्निधि उनके लिए ज्ञाननिधि का कार्य कर रही है।

उन्होंने उपर्युक्त बाबा दौलतराम वर्णी जैसे महान भूले बिसरे मनीषी को संत के योग्य पद पर प्रतिष्ठापित कर उनके अप्रकट साहित्य अवदान को समाज के सम्मुख रखकर अपने एवं माँ भारती के गौरवमय पुत्र होने का प्रमाण पेश किया है। 'गोम्मटसार जीवकांड छन्दोदय पद्यानुवाद' के साथ ही उनकी 15 अन्य कृतियों को एकत्रित कर एक पटल पर लाकर समाज एवं विद्वत्वर्ग दोनों के लिए महान उपकार किया है। उन कृतियों में जिनेन्द्रदेव, तीर्थक्षेत्र, चैत्यालय पूजा के साथ द्वादशानुप्रेक्षा भी शोभित है। विस्तार के भय से हम तो श्री सुरेश जी के प्रति मंगल कामना मात्र करते हैं।

चिर जीवौ जोरी जुरै, विमला सहित सुरेश।
उनको परमारथपनौ, स्वर्णिम होय विशेष।।

-स्वोपज्ञ

छन्दोदयः छन्दार्णव

गोम्मटसार जीव काण्ड का प्रकृत पद्यानुवाद 734 गाथाओं को पन्ना 158 पृष्ठ 316 एवं 734 ही छन्दों में सुष्ठु रूप से क्रमवार अनूदित करण के रूप में है। विदित ही है कि निम्न गाथानुसार गोम्मटसार में प्ररूपणाएँ प्रस्तुत की गईं हैं-

गुणजीवा पज्जत्ती, पाणा सण्णा य मग्गणाओ य।
उवओगो वि य कमसो, वीसं तु परूवणा भणिया।।

गुणस्थान, जीव समास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, 14 मार्गणा एवं उपयोग इस प्रकार क्रम से 20 प्ररूपणाएँ हैं। यही विषय तत्काल में प्राकृत संस्कृत के प्राय: अनभिज्ञ जनों के लिए पद्यानुवाद में अध्यात्म के काव्य रूप के रसिक बाबा दौलत राम वर्णी ने प्रकट किया है। एक एक गाथाओं की विषय वस्तु को एक या अनेक छन्दों में बद्ध किया है।

बाबा ने एक छप्पय में लिखा है कि ''सिद्धज्ञानभूषण'' कर्णाटक वृत्ति व तदनुसार केशव वर्णी कृत संस्कृत टीका, तदनुसार आचार्य कल्प पंडित प्रवर टोडरमल कृत ''सम्यक ज्ञान चन्द्रिका'' टीका (गोम्मटसार जीव कांड, कर्मकांड उभय रूप) के आधार पर यह कृति लिखी जा रही है। संदृष्टियों व यन्त्रों को उन टीकाओं से अवगत करने हेतु छोड़ दिया गया है। इस काव्य की प्रामाणिकता हेतु कुछ उल्लेख करना आवश्यक समझकर प्रस्तुत करता हूँ।

मनोज्ञ मूर्ति भाई सुरेश जी ने वर्णी जी की गोम्मटसार पद्यानुवाद छन्दोदय व शेष 15 पूजादि की पांडुलिपि की छाया प्रति मेरे पास अपेक्षित संशोधन हेतु प्रेषित की थी। मैंने सभी का सम्यक् अवलोकन कर यथा योग्य संशोधन भी किया था। छन्दोदय तो पर्याप्त रूप में कतिपय मात्र प्रतिलिपि दोषों के कारण अशुद्वियों को छोड़कर प्राय: शुद्ध ही था, श्रेष्ठ पांडुलिपि थी। मैंने पूजा रचनाओं में अशुद्धियों को अपनी अल्प समझ के द्वारा सुष्ठु किया था। इसके सम्पूर्ण पठन से मैं यह प्रमाणित करता हूँ कि वस्तुत: रचना आगमनुसार पूर्वापर विरोध रहित एवं स्याद्वाद शैली से ही मूल के अनुसार रचित है। वस्तुत: विज्ञजनों के लिये तो अतिशय उपहार एवं कण्ठाभरण है। मैंने सर्वप्रथम 1957 में ''अगास'' से प्रकाशित श्रद्धेय पं. खूबचन्द शास्त्री कृत गोम्मटसार ''बाल बोधिनी'' टीका का अध्ययन किया। पश्चात् पं. टोडरमल कृत सम्यकज्ञान चन्द्रिका जिसकी श्रेष्ठ शुद्व पाण्डुलिपि हमारे मैनपुरी नगर के सराउगियान स्थित दि. जैन बड़ा मंदिर जी में लकड़ी की सुन्दर मंजूषा में स्थापित है, का, मैं दैनिक स्वाध्याय किया करता था। यह लगभग सन् 1980 की बात है। मैनपुरी निवासी पूज्य आ. स्वाध्यायमती माता जी उस गोष्ठी की नियमित रुचिवान श्रोता बनकर सहयोग प्रदान किया करती थीं । पं. कैलाश चन्द्र जी की टीका का भी कृतज्ञ हूँ। उससे लाभ मिला। प्राकृत विवरण से अर्जित ज्ञान के आधार पर में यह स्पष्ट रूप से कह सकता हूँ कि 105 क्षुल्लक श्री गणेश प्रसाद वर्णी के श्रद्धाभाजन बाबा दौलतराम वर्णीकृत छंदोदय एक विशिष्ट प्रामाणिक कृति है।

उस जमाने में जैन कवियों द्वारा चारों अनुयोगों पर पद्य रचना, पुराण, रास, पद्यानुवाद, फुटकर छंद, पद, भजनों आदि में लेखन कार्य की एक लंबी परंपरा चली आ रही थी। समयसार नाटक, भूधरकृत पार्श्वपुराण, बुधजन सतसई, चरचा शतक, छहढाला वर्ग आदि रचनाएँ इसका उदाहरण तो हैं ही, साथ ही आध्यात्मिक पद, रास, भजन तो आमजनों में गाए जाते थे। शास्त्रीय तथा लोकगीत आदि के रूप में। उन्हीं साहित्यक अवदानों में यह छंदोदय भी अपनी महती प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा।

हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने जैन साहित्य की उपेक्षा की है। कतिपय पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पं. बनारसीदास चतुर्वेदी आदि अवश्य ही उल्लेख करते रहे हैं। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से इतिहास, पुरातत्व गद्य-पद्य काव्यों और रचनाओं से जैनेतर समाज में इसका समादर होने लगा है। जैन मनीषियों में अग्रणी डॉ. श्री कस्तूरचन्द्र कासलीवाल, जयपुर ने तो महावीर ग्रंथ अकादमी के स्थापन कार्य और उससे प्रकाशित 20 ग्रंथों से अधिक अपभ्रंश एवं हिन्दी प्रारंभिक के मुनि सभाचन्द्र और उनका पद्मपुराण, पार्श्वपुराण आदि 20 ग्रंथ मुझे भी प्रेषित किए थे। छंदोदय की तुलना उनमें से अनेकों ग्रंथों से की जा सकती है। जिसमें पं. बुलाकीदास कृत पांडवपुराण वा भूधरदास कृत पार्श्वनाथ पुराण भी गणनीय है।

अब हम छंदोदय की विशेषताओं पर प्रकाश डालने के इच्छुक हैं। अभी लगभग 10 दिन पूर्व भैया सुरेश जी ने ''भारतीय ज्ञानपीठ'' से नवप्रकाशित ''बाबा दौलतराम वर्णी'' कृत गोम्मटसार जीवकांड छंदोदय की प्रति जो कि श्रीमान् डॉ. प्रमोद जैन द्वारा संपादित है, प्रेषित की है। श्रेष्ठ गेटअप, साईज, मुद्रण और भईया के महनीय 'आमुख' सहित अपेक्षाकृत शुद्ध एवं आर्कषक उपादान है। प्रकाशक व सभी सहयोगियों ने श्रेष्ठ कार्य किया है। प्रबन्ध संपादक सुरेश जी व सभी धन्यवादार्ह हैं।

छन्दोदय भाषा की दृष्टि से

प्रस्तुत पद्यानुवाद की भाषा मूलतः ब्रज भाषा ज्ञात होती है। साथ ही यह मिश्रित भी प्रतीत होती है। इसमें अवधी, ढूँढारी व बुन्देली का भी दुग्ध में मिश्री के समान सुमधुर मेल है। इससे स्पष्ट है कि बाबा दौलतराम जी की रचना पर आगरा के कवियों, जयपुर के सरस्वती साधकों का प्रभाव है। वे सत्संगी होकर आध्यात्मिक स्वाध्याय, चर्चा गोष्ठियों में सम्मिलित होकर विद्वज्जनों से भी लाभान्वित होते होंगे। हमारे आगरा नगर में उनके समय में 36 शैलियाँ अर्थात् स्वाध्याय की गद्दियाँ थीं, जहाँ बड़े-बड़े, पांडे रूपचन्द्र, पं. बनारसीदास, भूधरदास तथा जयपुर व ब्रज क्षेत्र के ख्याति प्राप्त विद्वान सम्मिलित होते थे। स्वयं के कुशाग्र क्षयोपशम एवं पर्यटन में ज्ञान के आदान प्रदान के कारण भाषा खिचड़ी बन गई है। बुंदेलखंड के मूलतः निवासी थे, अतः उसका समावेश तो स्वाभाविक रूप से था ही। तत्काल की दृष्टि से भाषा परिष्कृत है। शब्दों के तोड-मरोड़ से भी, भाव-व्यंजना सुष्ठु रूप से करने के कारण बचा नहीं जा सका है। हिन्दी के विकास में छन्दोदय का भी यथेष्ट योगदान माना जायेगा। कुल मिलाकर इस करणानुयोगी भाषा को आध्यात्मिक भाषा कहना संगत होगा। इसमें पावनता है। युग के लिए दिशाबोध है, जैन सिद्धान्त के सप्ततत्त्वीय अवगम की प्रेरणा है। प्रशम, संवेग, आस्तिक्य, अनुकंपा व निर्वेद से आपूर्णता है। निम्न शब्दों में बाबा जी की भाषा को प्रकट करना सार्थक होगा-

सन्त की भाषा, विषय कषाय के अंत की भाषा।
जीव-कर्म परिणय की भाषा अनुभव वसंत की भाषा।।

दूर करो अंत दुराशा, ग्रहण करो दौलत वर्णी संत की भाषा।।

–स्वोपज्ञ

भाषा वह माध्यम है जो व्यंजनाकार के हितोपदेश को श्रोता के गले उतार दे। इसमें वर्णी सफल सिद्ध हुए हैं। यहाँ एकादि पद्य उद्धृत करना चाहूँगा–

प्रथम थान में प्रगट औदयिक भाव हैं।
सासादन में पारिणामि थिर भाव हैं।।
मिश्र थान में क्षय उपशम वरतै सही।
उपशम वेदक क्षायिक अविरत ठान ही।।

गुणस्थान अधिकार–14

मुनि गण सेवत भारती, घन सम भूतल केउ।
प्रक्षालित कलमल सकल, सो मम दुरित हरेउ।।

मंगलाचारण –5

कल्याणक पन लब्धि नव, कर अति दिपत स्वरूप।
अंघ्रिपद्म सत पत यजत, नमौं सुविध जग भूप।।

योगमार्गणा–1

उनकी भाषा में यथावसर अलंकारों के प्रयोग से छन्दोदय सुसज्जित है।

लोकद्वय हितकारक शैली

उस जमाने में निर्ग्रन्थ साधुओं का अभाव था। प्राय: आत्मा को प्रधान मानकर मनीषी एवं उदासीन जन स्व के साथ, ज्ञान का वितरण व प्रयोग जनता के कल्याण हेतु किया करते थे। इस लोक के सुख शान्तिमय जीवन तथा परम्परा से स्वर्ग मोक्ष के आशय से परिपूर्ण ही कविजन, सरस्वती साधक अपनी मनीषा को स्व के साथ पर के लिए बाँटते थे। ऐसे ही आध्यात्मिक, संत विरक्ति मय परिवेश वाले बाबा दौलतराम वर्णी जी भी लेखनी एवं वाणी से सर्वजन सुलभ, सरल, आध्यात्मिक एवं सामुदायिक भक्तिपूर्ण साहित्य का सृजन करते थे। वे सरल शैली, आगमिक शैली, सहज सुबोध शैली के जैन दर्शन के उद्भट विद्वान थे। यह उनकी लेखन शैली से प्रकट है, देखिए–

है अभीष्ट फ्ल सिद्ध उपाय जु सम्यग्ज्ञान सबै सुखदाई।
सो जु शास्त्र तैं होय बहुर श्रुत उतपति कही आप्त तैं गाई।।
इसहि हेतु तैं पूज्य कहौ सो जिहिं प्रसाद कर बोध लहाई।
पंडित हैं ते कृत उपकार हि बिसरैं नाहिं कदाचित भाई।।

वर्णी जी संस्कृत प्राकृत के अभ्यासी मनीषी थे। उनकी अपेक्षित अलंकारिक शैली से यह प्रकट होता है। शब्दालंकार, अर्थालंकार एवं भावालंकार की त्रिवेणी यत्र तत्र दृष्टिगत होती है। यद्यपि ग्रन्थ का विषय शुष्क प्रतीत होता है। आमजनों के लिए कष्ट-साध्य है फिर भी अलंकारों के यथास्थान व यथा अवसर बाबा ने छन्दोदय को आकर्षक, सरस व उपयोगी बना दिया है। एकादि लघु छन्द प्रस्तुत है जो दौलतराम पल्लीवाल के छहढाला से भी तुलनीय एवं विशिष्ट है। जैसे -

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुकल बैसाख।
कर्यो तत्त्व उपदेश यह, लखि बुधजन की भाख।।
छहढाला अंतिम ढाल।।6।।

ग्रन्थ ग्यारह प्रतिमा रचना
बिधु कुलगिरि हरि नियत वृष, पौष धवल दिन अंत।
लिखे छन्द निज दौल मह, करन कंठ हित संत।।37।।

विधु एक है। कुलगिरि छह हैं। हरि नौ हैं और नियत वृष एक है। अंकों की वामगति के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि यह रचना संवत 1961 में पूर्ण हुई।

गाथा मूल मांहि अर्थ विशेष न समुझाहिं।,
तातैं अर्थ अवधारने का लोभी थायकैं।।
अथवा स्वशिष्य ताके पढ़ावन का जु यह।
कर दियो प्रारंभ गुरूपदेश पायकैं।।
क्रीडन के ताल सम मैं बरणी दौल बाल।
जान श्रुतसागर में परयो उमगायकैं।।
सो अब लघु धी पाय, शारद थारी साय
आय गयो आधे पार बिलंब विहाय कैं ।।46।। पृ. 487

यहाँ बड़े ही स्वाभाविक शब्दों में कवि ने लघुता एवं मार्दव प्रकट किया है। यह हृदयस्पर्शी भक्ति भाव प्रशस्त पुण्य रूप है। निम्नांकित छहढाला के दोहे के भाव से तुलना कीजिए -

लघु धी तथा प्रमाद तैं, शब्द अर्थ की भूल।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावौ भव कूल।।

यद्यपि दोनों ही दौलतराम हैं और ''दौल'' उपनाम से दोनों ने ही अपनी संज्ञा प्रकट की है परंतु वर्णी ने तो विशाल रूप माँ भारती का भंडार भरा है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि छन्दोदय की शैली

प्रौढ़, परिमार्जित, प्रवाह पूर्ण, बोधगम्य एवं अनुभव पूर्ण भावभिव्यक्तिमय है सरलता व आस्तिक्य व भक्तिरस से परिपूर्ण है। यह आगमिक शैली प्रभावक है, आध्यात्मिकता से ओतप्रोत है।

अन्य विषेषताएँ

विशेषताएँ तो अगणित हैं, कतिपय प्रस्तुत हैं-

1. पिंगल शास्त्र की दृष्टि से विशिष्ट सुष्ठु मात्रिकता से ओतप्रोत है। मात्राओं का कहीं भी व्यभिचार नहीं है।
2. दोहा, सोरठा, चौपाई, रोला, सवैया तेईसा, इकतीसा, अडिल्ल, गीतिका छन्द, चाल आदि की विविध वर्णता से यह सजा हुआ काव्य है।
3. आध्यात्मिक, भक्ति, वात्सल्य, और शान्त रस का श्रेष्ठ परिपाक है।
4. गोम्मटसार जैसे क्लिष्ट दु:साध्य विषय को यह अनुवाद स्पष्ट करता है।
5. अनेकों पद्यानुवाद दृष्टि में आये, पर इस विषय का यह अनूठा विस्तृत कार्य है।
6. कवि ने यथावश्यक गाथाओं का विपुल विस्तार लिए भी अनुवाद किया है।

यहाँ हम पंडित प्रवर टोडरमल जी का एक छन्द प्रस्तुत करते हैं, तुलना की दृष्टि से-

कोऊ नय निश्चय सौं आतमा कों शुद्ध मानि,
भये हैं सुछन्द न पिछानैं निज शुद्धता।
कोऊ व्यवहार जप तप दान शील को ही,
आतम को हित मानि छाँडत न मुद्धता।।
कोऊ व्यवहार नय निश्चय के मारग कों,
भिन्न भिन्न पहचानि करैं निज उद्धता।
जब जानें निश्चय के भेद व्यवहार सब,
कारण है उपचार मानै तब बुद्धता।।

-पुरूषार्थ सिद्धध्युपाय टीका, उद्धृत पृ 1

अनुभाग रूप उदै थानक कषायनि के,
असंख्यात लोक परमान पहिचानिए।
तामै लोक असंख्यात भाग संक्लेश थान,
एक भाग मित थान विशुद्धि के जानिए।।
सोहू लोक असंख प्रमान जान तहाँ संक
लेश थान अशुभ त्रिलेश्यान के मानिए।
शुभ त्रिलेश्यान तनै थानक विशुद्धि जान,

कर सरधान भव रुचि उर आनिए।।16।।

– छन्दोदय, पृ. 330

छन्दोदय पद्यानुवाद समयसार नाटक, चरचा शतक आदि की समकक्षता रखता है। आशय यह है कि यह भीतर से, बाहर से, सब ओर से मीठा ही मीठा है।

छन्दोदय : सुमन संचय–द्वादशी

दोहा

अरि रज रहस विनाशि कर, गुण अनंत जिन पाय।
जगत नाथ जित दोष सो, नमौं सुमति जिनराय।। अधिकार 5/1

अडिल्ल

प्रथमुपशम सम्यक्त्व काल मांही सही।
समय आदि छै आवलि शेष रहै तहीं।।
अनंतानुबंधी चतु में इक उदय सैं।
नाशित सम्यक ह्वै सासादान सो लसै।। अ. 1/22

गीतिका

जो देशघाती संज्वलन नव नोकषाय उदै सही।
संयम सकल अरु मल जनक परमाद दोऊ ह्वै तहीं।।
जातैं जिया सोई प्रमत सोई विरत उर आनिये।
वरती जु षष्ठम थानि तातैं प्रमत संयत मानिये।। अ. 1/36

गीतिका

जैसे कुतक फल चूर्ण युत जल प्रसन वा ॠतु शरद ही।
सरवर तनौं जल होय निर्मल जमैं करदम तल महीं।।
तैसे सकल उपशांत मोह तनी प्रकृति कैसे तहाँ।
सो होत शांत कषाय प्रकृत न उदय योग्य कही जहाँ।। अ. 1/94

छप्पय

त्रस थावर बादर सूक्ष्म पर्याप्त जु जानौं।
अपर्याप्त प्रत्येक बहुर साधारण मानों।।
इन मांही अविरुद्ध प्रकृति सह मिल जुर ये ही।
ऐसौ जाति जु नाम कर्म के उदय भये ही ।।

जे प्रगट भये ऐसे जु तद्भव सदृश समान ये।
ते जीव समास जु होंय हैं आगम उक्त प्रमानये।। अ. 2/4

कवित्त

नित्य निगोदरु इतर सु भू जल अग्नि वायु षट् माँहि।
सप्त सप्त ही लक्ष वनस्पति में दश लक्ष सुयोनि बताहिं।।
विकल त्रय में दोय दोय पुन सुर नारक त्रियंच मे आँहिं।
चौ चौ लक्ष मनुष कैं चतुदश लक्ष जोनि इम कहीं जिनाह।। अ. 2/26

गीतिका

रत्नत्रयात्मक धर्म धनु ज्ञानादि गुण चिल्ला छता।
अरु तदाश्रय मार्गण चतुर्दशवान सुइ तिहिं कर हता।।
विधि मोहनी वैरी तनौ बल तिन जिनेशुर को यहाँ।
कर नमन बहु अधिकार युत अधिकार मार्गण कहुँ महाँ।। अ. 6/2

जोगीरासा

छै सौ योजन का सुवर्ग कर भक्त प्रतर जगमित।
योनमती तिरयंच तनौ परमान कहौ जिन श्रुत।।
पंचेन्द्री पर्याप्त पशुन बिन पंचेन्द्री तिरयंच।
अपर्याप्त तिरयंचन कौ परमान कहौ जिन संच।। अ. 6/20

चौपाई

छयासठ् सहस तीन शत जान, छत्तिस बार मरन जीवान।
अंतमुहूरत काल मँझार तितने ही सुक्षुद्र भव धार।। पर्याप्ति अ./8

पद्धरि

पुन अपर्याप्त के उदय माँह, पर्याप्तन निज निज पूर्ण पाँह।
अंतर महूर्त्त के मरण लेय, सो लब्धि अपर्याप्तक कहेय।। पर्याप्ति /6

सवैया इकतीसा

बार इक षट् थान होय जो ताके मझार,
गुणवृद्धि अमित सो होय एक बार ही।
पुन असंख्यात गुण वृद्धि सो सूच्यंगुल ,
असंख्यात वाँ जु भाग मात्र होय है सही।

फिर ताके नीची षडंक पंच अंक चतु,

अंक उरवंक रूप चारों एकाधिक ही।

सूच्यंगल के असंखवें भाग ले गुणित,

अनुक्रम तैं जानौ उरवंक परयंत ही।। ज्ञानमार्गणा अ./41

दोहा

तारण तरणि समान जो, विकट भवोदधि धार।

सुख अनन्त कारण नमौं, श्री अनंत जिन सार।। दर्शन मार्गणा-1

उपर्युक्त नमूनों से अवगत होता है कि वस्तुतः बाबा का सुरभित काव्योपवन कितना आल्हादकारी, मनोहारी आगमानुकूल हरित रूप में होगा!

उपरिलिखित अनुशीलन का यह सार है कि संत दौलतराम वर्णी ने आगम ज्ञान के बल से गणितीय संख्या पदों को, इस छन्दोदय पद्यानुवाद में, मात्रिक छन्दबद्ध करने की जो कला द्रव्यानुयोग व भक्तिमय परिवेश में प्रकट की है, वह जैन वाङ्मय में अनूठे रूप में स्थापित होगी। उद्घाटन कार्य तो भाई सतीशचंद जी व उनके सुपुत्र श्री सुरेश जैन, (आई.ए.एस.) ने किया ही है, अब विद्वज्जनों का यह माँ जिनवाणी व गोम्मटसार के प्रति उत्तरदायित्व होगा कि आम जनों को प्रसारित करें।

यहाँ बाबा दौलतराम वर्णी की लघुतापूर्ण, अहंकार रहित भावव्यंजना एवं जिनवाणी की अन्य दर्शनों की वाणी से विशेषता हेतु उद्देश्य को निम्न दो छन्दों द्वारा व्यक्त करना चाहेंगे-

जैसे काहू द्रह तैं सलिल धार कारंज की,

नदी सौं निकसि फेरि नदी में समानी है।

नगर में ठौर ठौर फैलि रही चहूँ ओर,

जाके ढिंग बहै सो ही कहै मेरो पानी है।।

तैसे घट सदन, सदन में अनादि ब्रह्म,

वदन वदन में अनादि ही की वानी है।

करम की कलोल की उसाँस सो बयार आवै,

मूढ़ भयौ प्राणी तासौ कहै मेरी वाणी है।।1।।

कैसे करि केतकी कनेर एक कही जाय,

आकदूध, गायदूध अंतर घनेर है।

रीरी होत पीरी, पै न रीस करै कंचन की,

कहाँ काक वानी कहाँ कोयल की टेर है।।

कहाँ भानु भारौ कहाँ आगिया बिचारौ,

कहाॅ पूनम कौ उजारौ, कहाँ मावस अँधेर है।

पक्ष छोरि पारखी निहारौ नेक नीके करि,

जैन बैन और बैन अन्तर घनेर है।।2।।

इस अध्यात्म व सिद्धान्त के शान्त सरोवर में से रत्न निकालने हेतु पृथक् से एक विद्वत्संगोष्ठी की उपादेयता है। मैं भाई सुरेश जी का ध्यान आकर्षित करता हूँ कि वे अवश्य पूरा करेंगे।

मैं बाबा दौलतराम वर्णी के प्रति अपनी श्रद्धा व उनकी काव्य प्रतिभा के प्रकाशन के लिए निम्न पंक्तियाँ प्रस्तुत करना चाहूँगा -

बहते ही जाओ, बहते ही जाओ जहाँ तक धार हो।

सहते ही जाओ, सहते ही जाओ, जहाँ तक परीषहों की मार हो।।

ढोते ही जाओ, ढोते ही जाओ, जहाँ तक भार हो।

लिखते ही जाओ, लिखते ही जाओ, जहाँ तक विकल्प के उस पार हो।।

निर्विकल्प का द्वार हो, मुक्ति का दरबार हो।।

-स्वोपज्ञ

अंत में वर्णी जी के निम्नांकित आशीर्वाद मय दोहे को प्रस्तुत कर विराम चाहूँगा -

तातैं मन वच काय कर, सेवहु ताहि सदीव।

जिम निज वरणी लक्ष लहि, भोगहु शर्म अतीव।।

-छन्दोदय पृ. 383

इत्यलम्। शुभं भूयात्। भद्रं भूयात्।

-पं. शिवचरनलाल जैन

संरक्षक एवं पूर्व अध्यक्ष

तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ

संरक्षक- अ.भा. दि. जैन शास्त्री परिषद्

श्याम भवन, बजाजा, मैनपुरी-205001 (उ.प्र.)

मो. 9219160350

दौलतरामजी की अज्ञात कृति का जीर्णोद्धार

-प्रो. वीरसागर जैन

अभी तक आपने किसी मन्दिर आदि के जीर्णोद्धार के समाचार तो सुने होंगे, पर आज मैं आपको एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के जीर्णोद्धार का शुभ समाचार सुना रहा हूँ। जी हाँ, यह ग्रन्थ है- गोम्मटसार छन्दोदय, जो आज तक सर्वथा अज्ञात था और अभी-अभी भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ के रचयिता हैं- दौलतराम वर्णी और इसके जीर्णोद्धारकर्ता हैं- श्री सुरेश जैन, आई.ए.एस., भोपाल एवं पं. प्रमोद जैन, जयपुर।

दरअसल हिंदी-साहित्य के इतिहास में 'दौलतराम' नाम के अनेक विद्वान् हो चुके हैं, जिनमें से नौ दौलतरामों का परिचय मैं अपने पी.एच-डी. के शोध-प्रबंध में लिख चुका हूँ; किन्तु उनमें से दो दौलतराम ही जैन समाज में अधिक लोकप्रिय हैं- एक तो 'छहढाला' वाले दौलतराम जी और दूसरे 'पद्मपुराण-भाषावचनिका' वाले दौलतरामजी।

किन्तु इन दो दौलतरामों के अतिरिक्त एक तीसरे दौलतराम और भी हैं जिनका जैन-साहित्य के इतिहास में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाना चाहिए। इन्हें दौलतराम वर्णी या बाबा दौलतराम वर्णी के नाम से जाना जाता है। इनका समय विक्रम की उन्नीसवीं सदी है। साहित्य-जगत में इनकी चार-पांच लघु कृतियाँ ही विशेष ज्ञात रही हैं- नैनागिरी-पूजा, चम्पापुर-पूजा, पावापुर-पूजा, ग्यारह प्रतिमा आदि; किन्तु अब श्री सुरेश जैन आई.ए.एस., भोपाल ने, जो कि इस समय नैनागिरि तीर्थक्षेत्र (मध्य प्रदेश) के अध्यक्ष भी हैं, बहुत अधिक शोध-खोज करके उनकी एक और विशाल कृति 'गोम्मटसार-छन्दोदय' को खोज निकाला है। न केवल खोज निकाला है, अपितु जैनदर्शन के उद्भट विद्वान् पं. प्रमोद जैन, जयपुर से उसका व्यवस्थित सम्पादन भी कराया है और फिर उसे भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली से स्तरीय ढंग से प्रकाशित भी करा दिया है। इसप्रकार एक महान ग्रन्थ के जीर्णोद्धार का शुभ कार्य अभी-अभी सम्पन्न हुआ है, जिसकी सूचना आप सबको देते हुए मुझे बहुत हर्ष हो रहा है।

'गोम्मटसार-छन्दोदय' नामक इस कृति की रचना आज से लगभग 116 वर्ष पूर्व अश्विन शुक्ला चतुर्थी विक्रम संवत् 1959 अर्थात् दिनांक 6 सितम्बर सन् 1902 ई. को पूर्ण हुई थी, किन्तु साहित्य-जगत में यह कृति अद्यावधि अज्ञात ही थी।

बाबा दौलतराम वर्णी कृत इस 'गोम्मटसार-छन्दोदय' में वस्तुतः आचार्य नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती के विश्वविख्यात ग्रन्थ 'गोम्मटसार' का हिंदी-पद्यानुवाद किया गया है। 'गोम्मटसार' दो भागों में विभक्त है- जीवकांड और कर्मकांड, किन्तु प्रस्तुत 'गोम्मटसार-छन्दोदय' में केवल जीवकांड का ही पद्यानुवाद है।

हो सकता है कि कवि ने कर्मकांड का भी पद्यानुवाद किया हो और वह भी कहीं छुपा पड़ा हो, अतः उसकी की भी शोध जारी रहनी चाहिए।

'गोम्मटसार-छन्दोदय' की प्रकृति वैसी ही है जैसी कि बनारसीदास कृत 'समयसार नाटक' की है अथवा वृंदावनदास कृत 'प्रवचनसार-भाषा' की है अथवा भैया भगवतीदास कृत 'द्रव्यसंग्रह-पद्यानुवाद' की है। इस प्रकार के प्रयोग पूर्व में अनेक हिन्दी-जैन कवियों ने किये हैं और इनका जैन-आगमों के संरक्षण एवं प्रचार-प्रसार में बड़ा भारी योगदान माना जाता है। हिन्दी-जैन कवियों की ये रचनाएँ साहित्यिक दृष्टि से भी इतनी मधुर रही हैं कि सहज ही जन-जन का कंठहार बन गईं।

'गोम्मटसार-छन्दोदय' नामक इस अद्भुत कृति का मूलाधार वस्तुतः अकेला 'गोम्मटसार' नहीं है, अपितु उसकी केशव वर्णी कृत संस्कृत-टीका 'जीवतत्त्वप्रदीपिका' एवं पं. टोडरमल कृत हिंदी-टीका 'सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका' भी इसके मूलाधार रहे हैं और इन तीनों के आधार से ही इस ग्रन्थ का निर्माण हुआ है, जैसा कि प्रत्येक अधिकार की और सम्पूर्ण ग्रन्थ की भी अंतिम प्रशस्ति (पुष्पिका) में कवि ने स्वयं स्पष्ट लिखा है। यथा-

''इत्याचार्य श्री नेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार, दुतीय नाम पंचसंग्रह, ताकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृतटीका वा सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नाम भाषाटीका के अनुसार मूल गाथार्थ छन्दबद्ध छंदार्णव ग्रन्थ में विंशति प्ररूपणासु जीवकांड समाप्त भया।''

इसी बात को उन्होंने छन्दबद्ध रूप में भी बड़ी सरसता के साथ प्रस्तुत किया है। यथा-

''नेमिचंद्र आचार्य पुनि, मूल ग्रन्थ करतार।
सो मंगल करतार ह्वै, हरहु अज्ञ अंधियार।।
करणाटक वृत्ती अनुसार, केशव वर्णी भव्य विचार।
संस्कृत टीक रची सुखदाय, टोडरमल लेय तसु छाय।।
भाषा टीक करी मैं दोय, वृत्तिन में से अर्थ अर्थहिं जोय।
गाथा मूल अर्थ के सार, बाँधे छन्द स्वमति अनुसार।।
जैसो अर्थ जु टीका माँह, अरु जिस भाँति समझ मो आँह।
सो सब कहो न यंत्र तनेय, अरु संदृष्टिक छन्द रचेय।।
जो हुअ छन्द अर्थ महिं भूल, शोधहु सुधी देख श्रुतमूल।
गाथारथ अवधारण काज, सुगम रीति कीनी हित साज।।''

-अंतिम प्रशस्ति, छन्द 41 से 45

'गोम्मटसार-छन्दोदय' नामक यह कृति साहित्यिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है, किन्तु अभी उसकी चर्चा का अवकाश नहीं है। कुल मिलाकर यह कृति जैन साहित्य की एक अनमोल धरोहर सिद्ध होती है और इसीलिए इसके जीर्णोद्धारकर्ता हार्दिक अभिनन्दन के पात्र हैं।

जैन धर्म का दर्पण

गोम्मटसार जीवकाण्ड छन्दोदय[1]

-डॉ. प्रेमभारती

धर्म और दर्शन दोनों में अन्तर है। धर्म की उत्पत्ति आत्मा की भूख से होती है और दर्शन की जिज्ञासा से। यही कारण है कि जब धर्म किसी न किसी प्रकार से रूढ़िवाद में फँस जाता है और जब दर्शन धर्म का अनुगामी हो जाता है, तो उसका स्वतंत्र चिन्तन क्षीण होने लगता है और उसकी भूमिका धार्मिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन तक ही सीमित हो जाती है।

भारतीय दर्शन के अनुसार मानव सत्ता का वृहत्तर अंश ही अस्ति, नास्ति, प्रिय, ब्रह्म या सच्चिदानन्द माना गया है। अतः ज्ञानाग्नि द्वारा जीवन भाव को भस्म करने के उपरान्त मानव मन में शुद्ध चैतन्य की पूर्णता तथा मर्यादा स्थापित हो जाए इसी को मोक्ष या निर्वाण कहा गया है। आजकल दर्शन और धर्म के भेद करने का विशेष प्रयत्न किया जा रहा है। ऐसे में मुझे भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित बाबा दौलतराम वर्णी कृत 'गोम्मटसार जीवकाण्ड छन्दोदय' पुस्तक पढ़ने को मिली है। पुस्तक के प्रबंध सम्पादक सुरेश जैन (आई.ए.एस.) तथा सम्पादक प्रमोद जैन हैं। दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र के प्राज्ञ पुरुष हैं। विषय के मर्मज्ञ हैं।

प्राज्ञ पुरु ष श्री सुरेश जैन के अनुसार गोम्मटसार जैन संस्कृति का आधारभूत पारिभाषिक और लाक्षणिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के प्रथम भाग का नाम जीवकाण्ड और द्वितीय भाग का नाम कर्मकाण्ड रखा गया है। इसमें 734 गाथाएँ हैं, जिनमें गुणस्थान और मार्गणास्थान की चर्चा की गयी है। मोह और मन, वचन, काय की प्रवृत्ति के कारण जीवन के अन्तरंग परिणामों में प्रतिक्षण होने वाले उतार-चढ़ाव को गुणस्थान कहा जाता है। गुणस्थान भावनात्मक तथा आध्यात्मिक विकास के चौदह सोपान हैं। इन सोपानों पर आगे बढ़ते हुए उच्चतम सोपान पर पहुँचकर साधक सिद्ध बन जाता है। मार्गणा का अर्थ है- खोज करना। जीव जिन भावों के द्वारा खोजे जाते हैं, उन्हें मार्गणा कहते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ प्राकृत भाषा का है, जिसका हिन्दी पद्यानुवाद बाबा दौलतराम वर्णी ने किया है। अतः इस ग्रन्थ का नाम बाबा दौलतराम वर्णी छन्दोदय रखा गया है। इसमें दोहा, चौपाई, गीतिका, कवित्त आदि अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है। इस ग्रन्थ की रचना को देखकर आचार्य विद्यानन्द, आचार्य विद्यासागर आदि प्रतिष्ठित आचार्यों ने इसको हिन्दी साहित्य का उत्कृष्ट एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना है। इन छन्दों की

[1] शिखरवार्ता से साभार संकलित।

व्याख्या श्री प्रमोद जैन ने की है। छन्दों की रचना बृज भाषा में की गयी है। अत: पाठकों को उसका अर्थ बोधगम्य हो, इस दृष्टि से व्याख्या के आधार पर इस ग्रन्थ की विषय वस्तु को समझना सहज हो सका है। विषय वस्तु लाक्षणिक एवं दार्शनिक होने से पाठक के लिए दुरूह है। इसे समझना बहुत कठिन-सा लगता है। अत: व्याख्या द्वारा ग्रन्थ की उपयोगिता बढ़ गयी है।

इस प्रकार धर्म, दर्शन और कर्मकाण्ड का एक सुन्दर समन्वित रूप इस ग्रन्थ में प्रतिपादित किया गया है। धर्म के इन दोनों पक्षों का समन्वय न हो तो धर्म भी अपनी वास्तविकता खो देता है। दुर्भाग्यवश मनुष्य इन दो पक्षों में से किसी एक पक्ष को महत्त्व देने की भूल कर बैठता है और उसे ही धर्म मान लेता है। ऐसे में धर्म का महत्त्व धीरे-धीरे कम होने लगता है। बिना समझे-बूझे बाहरी जीवन के विषय-सुखों का परित्याग कर देने से या आध्यात्मिक चोला ओढ़ लेने से मनुष्य की भावनाओं का दमन होता है। अत: आत्मसंयम के पीछे जो सिद्धान्त इस ग्रन्थ में बताये गये हैं, उनका सावधानी पूर्वक अभ्यास करना चाहिए। धर्म और बुराई दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते।

प्राय: देखने में आया है कि व्यक्ति दुकान खोलता है और पुत्र से कहता है- 'आटे में मिलावट कर लो।' 'हाँ, पिताजी।' 'मिर्ची में मिलावट कर लो।' 'हाँ, पिताजी। सारा काम पूरा हो गया है।' 'अच्छा बेटे चलो अब महाराज का प्रवचन सुनने चलो।' कृपया ऐसी मनोवृत्ति के लोग इस पुस्तक को नहीं पढ़ें। मिलावटी स्वभाव होने से वे धर्म को भी मिलावट का विषय मानते हैं। ऐसी पुस्तक पढ़कर उनके जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आ सकता। धर्म का साक्षात् लाभ है- चेतना का रूपान्तरण, फिर भी जो लोग सचमुच आत्मा की खोज में जुटे हैं और क्रियाकाण्ड में लिप्त हैं, उन्हें इस ग्रन्थ को पढ़कर अवश्य आत्मदर्शन होगा।

इस पूरे ग्रन्थ में मार्गणा में स्पष्ट किया गया है कि अपने चरित्र की हानि न होने दें। इसको कषाय कहतें हैं। देखने में आ रहा है कि लोग धर्म को मानते हैं, चरित्र को भुला देते हैं। इस ग्रन्थ को पढ़कर हम अपना चरित्र निर्माण करें, यही धर्म है और इस ग्रन्थ का सन्देश है।

ग्रन्थ की सबसे बड़ी निष्पत्ति है- अपने आपको जानना। संसार में नास्तिक भी हैं, आस्तिक भी हैं, किन्तु अपने आपको नहीं जानना, यह बहुत बड़ा आश्चर्य है। दुनिया को सबसे बड़ा खतरा उन आस्तिकों से है, जो सिद्धान्तत: तो आस्तिक हैं, किन्तु व्यवहारत: नास्तिक से भी दो कदम आगे हैं। ऐसे धर्मालु समझते हैं, पूजा करना ही सबसे बड़ा धर्म है। मुनियों का आशीर्वाद मिल जाए, किन्तु त्याग के मार्ग पर चलना न पड़े। ऐसे लोगों को यह ग्रन्थ शुष्क ही लगेगा।

ऐसे लोगों के लिए धर्म एक समस्या बन गया है। इसलिए पाठकों को इस ग्रन्थ को पढ़कर धर्म को वर्तमान स्वरूप में जानने का प्रयत्न करना होगा। इसके अध्ययन से पाठक अपनी समस्याओं को

सुलझाने का मार्ग खोजें, किन्तु धर्म को समस्या न बनाएँ। आज की नयी पीढ़ी में धर्म की जिज्ञासा तो हो रही है, किन्तु उसकी सही व्याख्या अथवा व्यवहार उन्हें कहीं नहीं दिखायी देता। इसलिए पाठकों को वर्तमान के सन्दर्भ को जोड़कर इस पुस्तक पर अपनी बुद्धि के अनुसार ममन पूर्वक चिन्तन करना होगा तभी इस प्रकार की रचना एवं प्रस्तुति का महत्त्व बढ़ेगा। ऐसी मेरी मान्यता है।

समस्याओं के उफान पर छींटे देने के लिए इस प्रकार की पुस्तकें अवश्य प्रकाशित की जानी चाहिए। श्री सुरेश जैन तथा श्री प्रमोद जैन ने साधकों में चित्त निर्माण का जो दर्पण यहाँ पुस्तकाकार रूप में प्रस्तुत किया है, उसके लिए वे बधाई के पात्र हैं। आज धर्म की मीमांसा सही ढँग से हो इसकी माँग है। आज जो साहित्य प्रकाश में आ रहा है, उससे संस्कार की जमी हुई परतें उखड़ती नजर आती हैं। यदि इस प्रकार का प्रयत्न नहीं किया गया तो नयी पीढ़ी के मानसिक आवेग पर धर्म के आलोक का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ेगा।

सम्पादकद्वय ने इस ग्रन्थ के मूल स्वरूप को अक्षुण्ण रखते हुए लिपिगत तथा भाषागत दोषों का परिमार्जन कर इसे सुगम और सरल बनाने का जो प्रयास किया है वह श्लाघनीय है।

बाबा दौलतराम वर्णी, नैनागिरि द्वारा विरचित गोम्मटसार जीवकाण्ड के पद्यानुवाद छन्दोदय और उनकी 15 रचनाओं पर समीक्षात्मक विमर्श

संस्करण 2020

- सुरेश जैन (आई.ए.एस.)
30, निशात कालोनी,
भोपाल-462003
मोबाइल- 94250 10111

लगभग इक्कीस सौ वर्ष पहले ईसापूर्व प्रथम शती में आचार्य भूतबली-पुष्पदंत द्वारा प्राकृत भाषा में लिपिबद्ध षट्खंडागम जैन संस्कृति का आगम/सिद्धान्त ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की रचना के पूर्व आचार्य गुणधर भट्टारक जी द्वारा ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी के उत्तरार्ध में कसायपाहुड की रचना की जा चुकी थी, तथापि षट्खण्डागम जैन संस्कृति का प्राचीनतम एवं आधारभूत ग्रन्थ है। षट्खण्डागम और कसायपाहुड अपनी धवला और जय धवला टीका के कारण धवला और जय धवला के नाम से विख्यात है।1 श्रुत-स्कंध स्वरूप षट्खण्डागम ग्रन्थ छह खण्डों - जीवट्ठाण (जीवस्थान), खुद्दाबंध (क्षुद्रकबंध), बंधसामित्त (बंध स्वामित्व), वेयणाखंड (वेदनाखण्ड), वग्गणाखंड (वर्गणाखण्ड) और महाबंध - में विभाजित है। इसी कारण से इस आदिग्रन्थ का नामकरण षट्खण्डागम किया गया है। इस ग्रन्थ के मूल बिन्दुओं के आधार पर आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने दसवीं शताब्दी में गोम्मटसार ग्रन्थ का प्रणयन किया है। यह उल्लेखनीय है कि गोम्मटसार जीवकाण्ड-कर्मकाण्ड के साथ ही लब्धिसार, क्षपणासार और त्रिलोकसार भी आचार्य नेमिचन्द्र की धवल कीर्ति के अक्षय प्रकाश स्तंभ हैं।

आध्यात्मिक जगत में यह लोककथा प्रचलित है कि आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने अपने शिष्य वीर मार्तण्ड चामुण्डराय के अज्ञान-अंधकार को दूर करने के लिए षट्खण्डागम और उसकी धवला टीका के साररूप गोम्मटसार जैसे महत्त्वपूर्ण और पावन ग्रंथ की रचना की और चामुण्डराय के पारिवारिक नाम गोम्मट के आधार पर इस ग्रन्थ का नाम 'गोम्मटसार' रखा। गोम्मट मराठी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ है उत्तम और आकर्षक।2

चामुण्डराय द्वारा निर्मित करायी गयी गोम्मटेश्वर बाहुबली की उत्तुंग प्रतिमा के सामने चन्द्रगिरि पर्वत पर स्थित और चामुण्डराय द्वारा ही निर्मापित श्री नेमिनाथ जिनालय में विराजमान इन्द्रनील मणिमय श्री नेमिनाथ भगवान की प्रतिमा के सम्मुख बैठकर आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांत-चक्रवर्ती द्वारा इस ग्रन्थ की रचना की गयी। प्राचीनकाल में भरत क्षेत्र के छह खण्डों अथवा प्रदेशों को जीतने वाले राजा को चक्रवर्ती

की उपाधि दी जाती थी। इसी प्रकार षट्खण्डागम ग्रन्थ के छह खण्ड हैं। आचार्य नेमिचन्द्र ने पूरी साधना पूर्वक इस ग्रन्थ का आद्योपान्त अध्ययन, अध्यापन और पारायण किया। परिणामतः उन्हें सिद्धान्त चक्रवर्ती की उपाधि से विभूषित किया गया। 3

षट्खण्डागम के प्रथम पाँच खण्डों के निष्कर्ष - सार रूप गोम्मटसार ग्रन्थ में बीस प्ररूपणाओं, गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, चौदह मार्गणाओं और उपयोग के द्वारा किए गए कर्मों का वर्णन किया गया है। गोम्मटसार ग्रन्थ के प्रथम अधिकार का नाम जीवकाण्ड और द्वितीय अधिकार का नाम कर्मकाण्ड रखा गया है। काण्ड का अर्थ है 'समूह'। इन दोनों काण्डों में जीव-समूहों और कर्म-समूहों की चर्चा किये जाने से इनका नाम जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड रखा गया है। काण्ड का अर्थ जोड़ने वाला भी है। इस दृष्टि से ये दोनों अधिकार जीव को अपने स्वभाव से जोड़ने की शिक्षा प्रदान करते हैं। जीवकाण्ड की कुल 734 गाथाओं में विशेषतः गुणस्थान और मार्गणा के स्थानों की चर्चा की गयी है।

जीवकाण्ड गणित की भाषा में आत्मा को परिभाषित करता है। अतः इस ग्रन्थ का अध्ययन करने के लिए लौकिक और अलौकिक गणित का ज्ञान आवश्यक है। करणानुयोग के इस ग्रन्थ में गणित के लौकिक सिद्धांतों - जोड़ना, घटाना, गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल - का अनेक स्थलों पर उपयोग किया गया है।

जीवकाण्ड में गुणस्थानों और मार्गणाओं का विस्तृत विवेचन किया गया है। मोह और मन, वचन, काय की प्रवृत्ति के कारण जीव के अंतरंग परिणामों में प्रतिक्षण होने वाले उतार-चढ़ाव को गुणस्थान कहते हैं। 4 गुणस्थान भावनात्मक एवं आध्यात्मिक विकास के 14 सोपान हैं। मिथ्यादृष्टि भी अपने पवित्र कार्यों से अपनी भावना को शुद्ध, शुद्धतर और शुद्धतम करते हुए तथा उच्च से उच्चतर सोपानों पर आगे बढ़ते हुए उच्चतम सोपान पर पहुँचकर सिद्ध बन जाता है। 14 गुणस्थान निम्नांकित हैं-

मिथ्यात्व, सासादन सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अविरतसम्यक्त्व, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगकेवली और अयोगकेवली।

इसी प्रकार मार्गणा का अर्थ है- खोज करना। जीव जिन भावों के द्वारा खोजे जाते हैं या जिन पर्यायों में खोजे जाते हैं, उन्हें मार्गणा कहते हैं।5 चौदह मार्गणाएँ निम्नांकित हैं-

गति मार्गणा, इन्द्रिय मार्गणा, काय मार्गणा, योग मार्गणा, वेद मार्गणा, कषाय मार्गणा, ज्ञान मार्गणा, संयम मार्गणा, दर्शन मार्गणा, लेश्या मार्गणा, भव्यत्व मार्गणा, सम्यक्त्व मार्गणा, संज्ञी मार्गणा और आहार मार्गणा।

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती द्वारा रचित गोम्मटसार, श्रीमत् केशववर्णी विरचित कर्णाटकवृत्ति तथा संस्कृत टीका - जीवतत्व प्रदीपिका, डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये और सिद्धांताचार्य पण्डित कैलाशचन्द्र शास्त्री द्वारा किए गए हिन्दी अनुवाद तथा लिखी गयी प्रस्तावना के साथ, भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा द्वितीय संस्करण के रूप में चार भागों में सन् 1997 में प्रकाशित किया गया है। यह अत्यधिक सराहनीय कार्य है। इसी ग्रन्थ के प्रथम भाग में प्रकाशित पण्डित कैलाशचन्द्र द्वारा सन् 1977 (विक्रम संवत् 2034) में लिखे गये आद्य वक्तव्य से यह विदित होता है कि उन्होंने हिन्दी अनुवाद करते समय पण्डित टोडरमल जी की हिन्दी टीका का अनुसरण किया है।

बचपन में मेरे पिता स्व. सिंघई सतीशचन्द्र जैन, नैनागिरि बाबा जी द्वारा विरचित रेशिंदिगिरि - नैनागिरि पूजन मंदिर में अष्ट द्रव्य के साथ किया करते थे। उनके द्वारा लिखित छन्दोदय की हस्तलिखित प्रति को नियमित रूप से पढ़ा करते थे। पिता जी के स्वाध्याय-चौके पर बाबा जी की सभी रचनाएँ रखी रहती थीं। वे अपने प्रवचनों में छन्दोदय के पद्यों का उल्लेख करते थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में यह पुस्तक पढ़ने के लिए मुझे प्रेरित किया, किन्तु उस समय इसे पढ़ने की रुचि मेरे मन में जागृत नहीं हो सकी। इसके संरक्षण और मुद्रण का विचार तो मन में भी नहीं आया। जब चार-पाँच वर्ष पूर्व मेरी माता श्रीमती केशरदेवी मेरी पत्नी न्यायमूर्ति विमला जी के शासकीय बंगले में मेरे साथ जबलपुर में रहीं तब उनकी सतत चर्चा और प्रेरणा से मुझे अपने गुरूणां गुरु की जीवनगाथा पढ़ने की इच्छा हुई। यह जीवनगाथा पढ़ते ही मुझे पिताजी की सीख का स्मरण कर अत्यधिक दु:ख हुआ। पूज्य गणेश प्रसाद जी वर्णी द्वारा लिखित और वर्ष 1949 में प्रकाशित जीवनगाथा[6] को पढ़ने से मुझे बाबा दौलतराम वर्णी, नैनागिरि की विभिन्न रचनाओं की सांकेतिक जानकारी प्राप्त हुई। इन रचनाओं में से केवल रेशिंदिगिरि (नैनागिरि) जैन तीर्थ पर वर्ष 1904 में बाबा जी द्वारा लिखित केवल पूजन की पुस्तिका ही मुझे उपलब्ध थी। अत: मैंने बाबा जी द्वारा विरचित साहित्य की खोज करने का दृढ़ निश्चय किया।

जैन संस्कृति के चलते-फिरते विश्वविद्यालय एवं शताधिक शोध कर्ताओं को ठोस सहयोग देने वाले पूज्य अभयसागर जी मुनिराज की उत्कृष्ट शोधी प्रवृत्ति एवं असीम विद्वत्ता के कारण वर्ष 2015 में मुझे बाबा दौलतराम वर्णी द्वारा हस्तलिखित छन्दोदय, पण्डित हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री द्वारा गत शताब्दी के

सत्तर के दशक में प्रकाशित दो आलेख – जिनमें बाबा जी की छोटी–छोटी दो रचनाएँ प्रकाशित की गयी हैं – एवं बाबा जी द्वारा लिखित छोटी–छोटी तेरह रचनाओं की हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई। इन तेरह रचनाओं के संबंध में मेरा आलेख अर्हत् वचन जून, 2015 में प्रकाशित किया जा चुका है।

बाबा जी द्वारा विरचित छन्दोदय का वैशिष्ट्य एवं काल

गोम्मटसार का हिन्दी पद्यानुवाद बाबा दौलतराम जी ने आश्विन शुक्ला चतुर्थी विक्रम संवत् 1959 (तदनुसार 6 सितम्बर, 1902 दिन शनिवार) को नैनागिरि तीर्थ पर रहकर पूर्ण किया। श्री राजमल जैन द्वारा मूल कॉपी की यह प्रतिलिपि श्रावण शुक्ला सप्तमी शनिवार विक्रम संवत् 1990 (सन् 1933 श्री महावीर निर्वाण संवत् 2459) को श्री सम्मेद शिखर दिगंबर जैन तेरहपंथी कोठी, मधुवन, पोस्ट पारसनाथ, जिला हजारीबाग में पूर्ण की गई। श्री पन्नालाल सोनी, व्यवस्थापक, ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, झालरापाटन सिटी ने चैत्र शुक्ला चतुर्दशी सं. 1992 (सन् 1937) के दिन यह प्रति रूपये 25 रूपये में क्रय की। इस प्रति में 158 पन्ने हैं। लिपि अत्यधिक सुन्दर, मनोज्ञ और आकर्षक है। मुझे इस प्रति की छायाप्रति ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, व्यावर, राजस्थान से प्राप्त हुई। 7

प्राचीन देवनागरी लिपि में हिन्दी पद्य के विभिन्न छन्दों में निबद्ध छन्दोदय की हस्तलिखित प्रति की साईज 9'' बाई 5'' है। यह ग्रन्थ 158 पन्नों, 316 पृष्ठों तथा 733 छंदों में निबद्ध है तथा 22 अधिकारों में विभाजित है। यह कृति प्रत्येक पन्ने में दोनों ओर लिखी हुई है। अक्षर सुन्दर और सुवाच्य हैं। प्रत्येक पंक्ति में लगभग 40 से 45 अक्षर निहित हैं। इस ग्रन्थ के अंतिम दो पृष्ठों में ग्रन्थ की प्रशस्ति/पुष्पिका दी गयी है। इसके प्रथम और अंतिम पृष्ठ का अवलोकन करने से ही कृति का नाम और विषय वस्तु का सहज ही बोध हो जाता है। इस कृति के कर्ता ने मूल गाथा के अर्थ को छंदोबद्ध किया है। अपनी कृति के अंतिम पृष्ठ में अपने गुरूओं के नाम के साथ पृष्ठ 157 पर छंद 37 में स्वकीय नाम 'वर्णी दौल बाल' का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट होता है कि इस कृति की रचना बाबा दौलतराम वर्णी ने की है। इसका आठवाँ छंद निम्नांकित है8–

नम नेमिचंद युगपद्मपाय। श्री सिद्धज्ञान भूषण जिनाय।।
करहौं करणाटकि बृत्ति सेह। गोमट्टसार वृत्ती जुयेह।।8।।

इस कृति का सैंतीसवाँ छंद 9 निम्नांकित है–

गाथा मूल मांहि अर्थ विशेष न समुझांहि तातैं अर्थ अबिधारनें का लोभी थायकैं।

अथवा स्वशिष्य ताकि पडावन काजु यह, कर दियो प्रारँभ गुरूपदेश पायकैं।।
क्रीडन के ताल सम मैं बरणी दौल बाल, जान श्रुत सागर में पर्यो उमगायकैं।
सो अब लघु धी पाय शारद थारी साय, आय गयो आधे पार विलँब बिहायकैं।।37।।

छन्दोदय में कुल 22 अधिकार हैं। प्रत्येक अधिकार के अंत में बाबा जी द्वारा पुष्पिका अंकित की गयी है। छन्दोदय के प्रथम, द्वितीय, छठवें, सातवें, आठवें, नवमें, ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें, सत्रहवें, अठारहवें, उन्नीसवें, बीसवें, इक्कीसवें - इस प्रकार सोलह अधिकारों में अंकित पुष्पिका के अंत में इस ग्रन्थ का नामकरण छन्दोदय किया गया है। तीसरे, चौथे, दसवें, सोलहवें और बाइसवें इस प्रकार पाँच अधिकारों के अंत में अंकित पुष्पिका में ग्रन्थ छन्दार्णव का नाम लिखा गया है। पाँचवे अधिकार में पुष्पिका अंकित नहीं है। इस प्रकार अधिकारों के अंत में अंकित सोलह पुष्पिकाओं में इस ग्रन्थ का नाम छन्दोदय तथा पाँच पुष्पिकाओं में इस ग्रन्थ का नाम छन्दार्णव लिखा गया है। पाँचवे अधिकार को छोड़कर सभी अधिकारों में छन्दोदय और छन्दार्णव के विशेषण के रूप में छन्द बन्ध शब्द-युग्म प्रयोग किए गए हैं। इस विवेचन के आधार पर हमने इस ग्रन्थ का नाम छन्दोदय रखा है।

बाबा दौलतराम वर्णी के छन्दोदय में दोहा, गीतिका, चौपाई, अडिल्ल, कवित्त, सवैया आदि अनेक हिन्दी छन्दों का प्रयोग किया गया है। उन्होंने जीवकाण्ड से प्राकृत गाथाओं को उद्धृत कर उनके नीचे ऐसे छन्दों में अपनी हिन्दी पद्य रचना की है।

हिन्दी महाकवि दौलतराम वर्णी नैनागिरि ने छन्दोदय काव्य के प्रथम छंद की प्रथम अर्धाली में मूल ग्रन्थकर्ता नेमीचन्द्राचार्य की तुलना चंद्रमा से कर उन्हें प्रणाम करते हुए लिखा है कि 'नमौ ज्ञान आभरण युत, नेमिचन्द्र समचन्द्र।' हिन्दी जगत के विद्वान् वर्णी जी ने इसी प्रकार आठवें छंद के प्रथम पद में उनको नमस्कार करते हुए कहा है कि 'नम नेमिचन्द्र युग पद्म पाय।' ग्रन्थारंभ के चतुर्थ छंद में पुनः आचार्य प्रवर की चरण वंदना करते हुए वर्णी जी ने उल्लेख किया है कि-

वा श्री नेमिचन्द्र वर सूर, सब ही पूर्व कथित गुण पूर।
तिन जुग चरणांबुज शिर नाय, जीव प्ररूपण कहौं सु गाय।।

बाइसवें आलापाधिकार के इकतालीसवें छंद में वर्णी जी ने प्राकृत और कन्नड के महाकवि नेमिचन्द्राचार्य से निम्नांकित शब्दों में अज्ञान के अंधकार को दूर करने के लिए प्रार्थना की है-

नेमिचन्द्र आचार्य पुन, मूलग्रन्थ करतार।
सो मंगल करतार ह्वै, हरहु अज्ञ अँधियार।।

बाबा दौलतराम जी सन् 1883 में जैनबद्री-मूलबद्री यात्रापाठ के लेखक स्वस्ति श्री भट्टारक सुरेन्द्रकीति जी के साथ नैनागिरि से श्रवणबेलगोल गये। लंबी अवधि तक श्रवणबेलगोल में रहकर उन्होंने गोम्मटसार की पाण्डुलिपि तैयार की। श्रवणबेलगोल से नैनागिरि लौटकर भगवान पार्श्वनाथ के प्राचीन मंदिर में बैठकर उन्होंने गोम्मटसार के हिन्दी पद्यानुवाद का कार्य प्रारंभ किया और आश्विन शुक्ला चतुर्थी विक्रम संवत् 1959 (तदनुसार 6 सितम्बर, 1902 शनिवार)को पूर्ण किया।

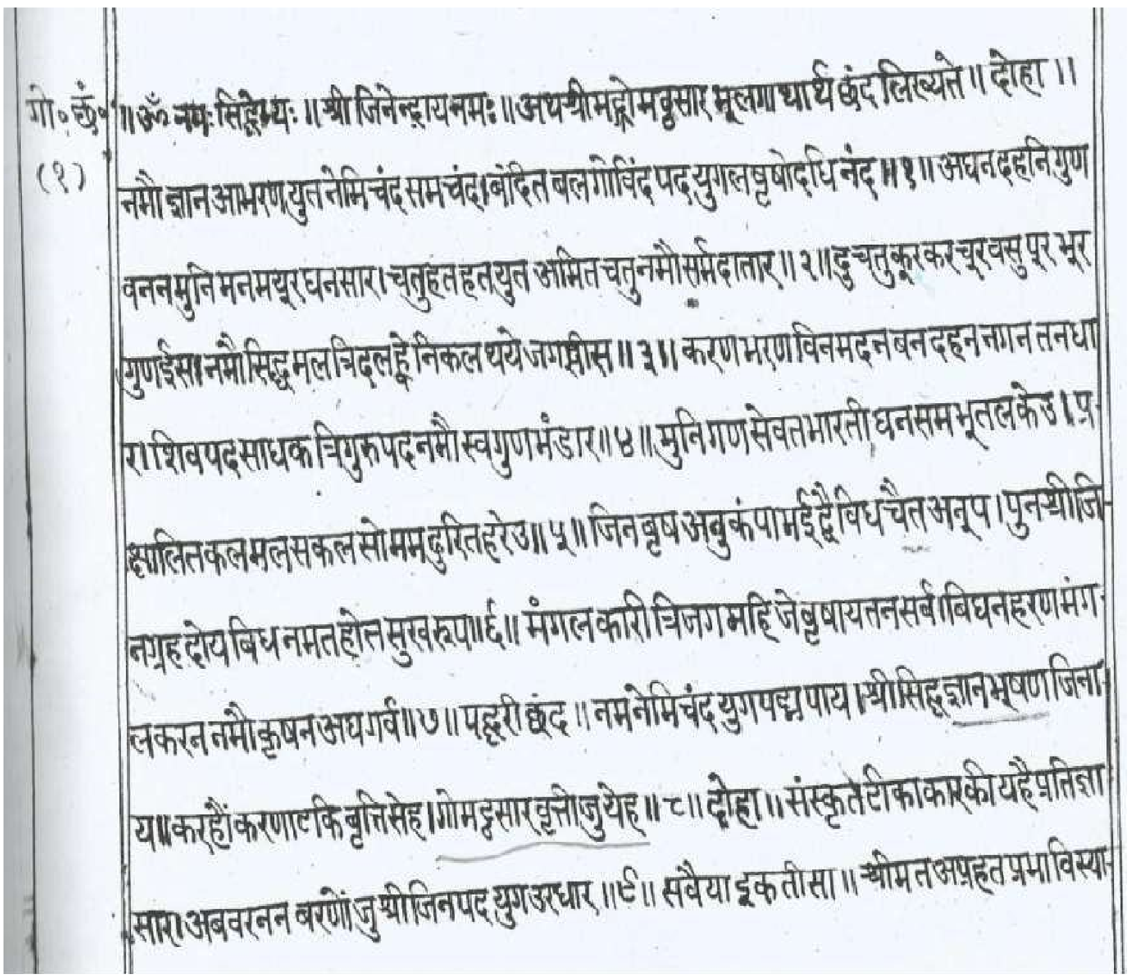
गो॰ छं॰ (१)
॥ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥श्री जिनेन्द्राय नमः ॥अथ श्री गोम्मटसार मूलगाथार्थ छंद लिख्यते ॥ दोहा ॥
नमौ ज्ञान आभरण युत नेमिचंद समचंद। बंदित बल गोविंद पद युगल क्षीरोदधि नंद ॥१॥ अघन दहनि गुण
वनन मुनि मनमयूर घनसार। चतुहत हतयुत अमित चतुनमौ समदातार ॥२॥ दुचतु कूर कर चूर वसु पूर भूर
गुणईसा नमौ सिद्ध मल चिदलहै निकल थये जगदीस ॥३॥ करण भरण विनमदन बन दहन न्यान तनधा
रा शिवपदसाधक त्रिगुरूपद नमौ स्वगुणभंडार ॥४॥ मुनिगण सेवत भारती घनसम भूतलकेउ। प्र
क्षालित कलमल सकल सो मम दुरित हरेउ ॥५॥ जिन वृष अंबुकं पाम ई द्वैविध चैत अनूप। पुन्य श्री जि
नग्रह दोय विध नमत होत सुखरूप ॥६॥ मंगलकारी त्रिजग महि जे बृषायतन सर्व। विघनहरण मंग
लकरन नमौ क्षपन अघ गर्व ॥७॥ पद्धरी छंद ॥ नमनेमिचंद युगपद्म पाय। श्री सिद्ध ज्ञान भूषण जिना
य ॥ करहौं करणाटकि बृत्ति सेह। गोमट्टसार वृत्ती जु येह ॥८॥ दोहा ॥ संस्कृत टीकाकार की यहै प्रतिज्ञा
सार। अब वरनन वरणौं जु श्री जिनपद युग उरधार ॥९॥ सवैया इकतीसा ॥ श्रीमत अप्रहत प्रभा विस्या

हस्तलिखित छन्दोदय के प्रथम पृष्ठ का छायाचित्र

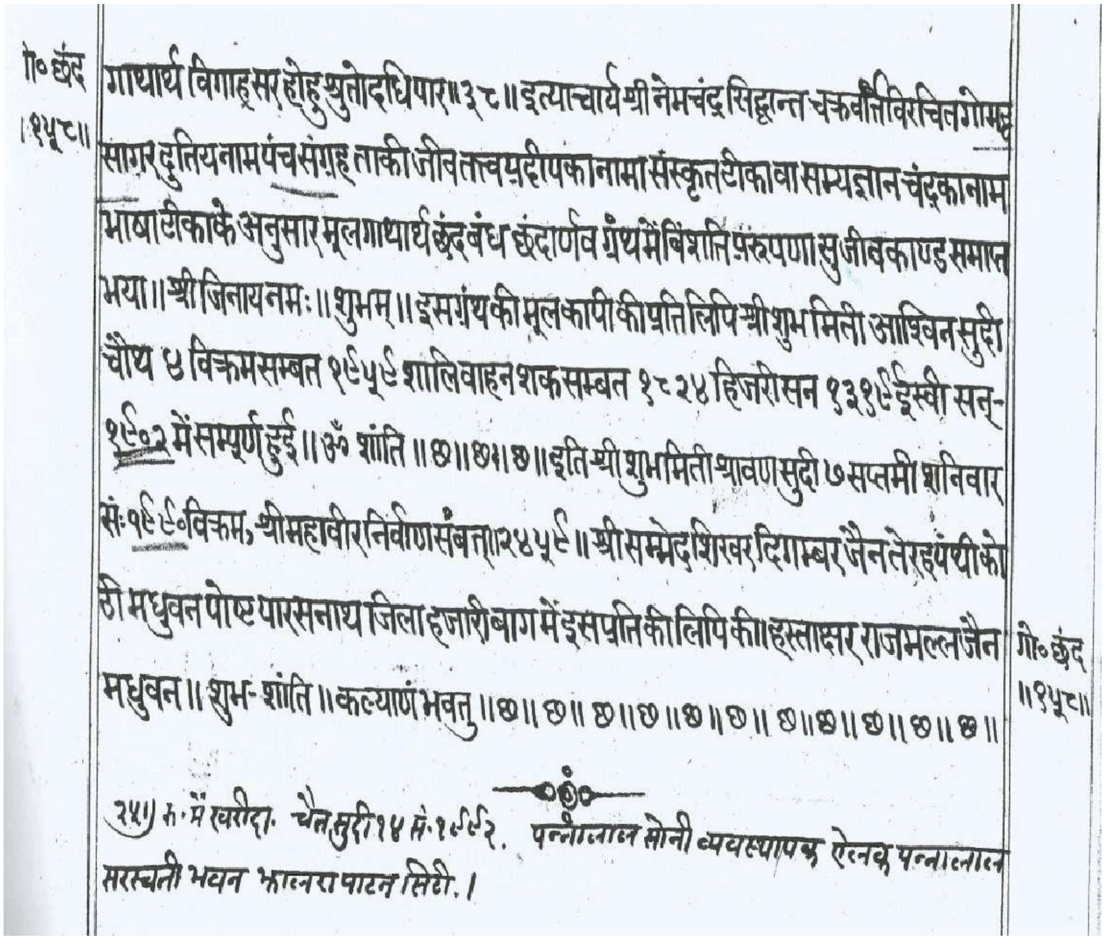

गो० छंद ।१५८॥ गाथार्थ विगाहू सर होहु श्रुतोदधिपार॥३८॥ इत्याचार्य श्री नेमचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्ति विरचित गोमट्ट सागर द्वितिय नाम पंचसंग्रह ताकी जीवतत्त्वप्रदीपका नामा संस्कृत टीका वा सम्यग्ज्ञान चंद्रिका नाम भाषा टीका के अनुसार मूल गाथार्थ छंद बंध छंदार्णव ग्रंथ में विंशति प्ररूपणा सु जीवकाण्ड समाप्त भया॥ श्री जिनाय नमः॥ शुभम्॥ इस ग्रंथ की मूल कापी की प्रति लिपि श्री शुभ मिती आश्विन सुदी चौथ ४ विक्रम सम्बत १९५९ शालिवाहन शक सम्बत १८२४ हिजरी सन १३१९ ईस्वी सन् १९०२ में सम्पूर्ण हुई॥ ॐ शांति॥ छ॥ छ॥ छ॥ इति श्री शुभमिती श्रावण सुदी ७ सप्तमी शनिवार सं: १९६० विक्रम, श्री महावीर निर्वाण संवत् २४५९॥ श्री सम्मेद शिखर दिगम्बर जैन तेरहपंथी कोठी मधुवन पोष्ट पारसनाथ जिला हजारीबाग में इस प्रति की लिपि की॥ हस्ताक्षर राजमल्ल जैन मधुवन॥ शुभ-शांति॥ कल्याणं भवतु॥ छ॥ छ॥ छ॥ छ॥ छ॥ छ॥ छ॥ छ॥ छ॥ छ॥ छ॥ गो० छंद ॥१५८॥

२५) रु. में खरीदा. चैत सुदी १४ सं. १९९२. पन्नालाल सोनी व्यवस्थापक ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन झालरापाटन सिटी./

हस्तलिखित छन्दोदय के अंतिम पृष्ठ का छायाचित्र

यह घटनाओं का विचित्र किन्तु सुखद संयोग है कि आज से सवा-सौ वर्ष पूर्व गोम्मटसार भगवान बाहुबली की नगरी श्रवणबेलगोल से चलकर भगवान पार्श्वनाथ की नगरी नैनागिरि पहुँचा। गोम्मटसार ने प्राकृत, संस्कृत और कन्नड़ भाषाओं के साथ हिन्दी पद्य का स्वरूप गृहण किया। चन्द्रगिरि (श्रवणबेलगोल - कर्नाटक) पर बैठकर लिखे गए जीवकाण्ड का बाबा जी द्वारा विन्ध्याचल पर्वत के नैनागिरि शिखर पर बैठकर हिन्दी पद्यानुवाद किया गया है। चन्द्रगिरि पर स्थित भगवान नेमिनाथ के मंदिर में बैठकर जीवकाण्ड की रचना की गयी है और हिन्दी पद्यानुवाद भगवान नेमिनाथ के समवसरण में विराजे आचार्य वरदत्त की सिद्धभूमि नैनागिरि में बैठकर किया गया है। नेमिचन्द्र ने जीवकाण्ड की रचना चामुण्डराय जैसे शिष्य को पढ़ाने के लिए की, किन्तु बाबा जी ने गोम्मटसार का सरलीकरण करते हुए स्थानीय सरल हिन्दी में अपनी

रचना पहुँच-विहीन पिछड़े ग्रामों में स्थित अशिक्षित और यत्किञ्चित शिक्षित छात्रों और श्रावकों को पढ़ाने के लिए की। 10 उनकी पाठशाला में पढ़कर और उनकी रचनाओं का अध्ययन कर नैनागिरि में आदिसागर जैसे संत ने जन्म लिया। 11 आचार्य नेमिचन्द्र ने विन्ध्यगिरि पर भगवान बाहुबली की सबसे विशाल प्रतिमा की स्थापना की। बाबा दौलतराम जी ने नैनागिरि में सन् 1902 में बुन्देलखण्ड की सर्वप्रथम पाठशाला की स्थापना की और उनके छात्र रहे मुनिवर आदिसागर ने सन् 1952 में नैनागिरि में भगवान पार्श्वनाथ की विशाल प्रतिमा और भगवान बाहुवली की प्रतिमा की स्थापना की। गोम्मटसार की रचना एक हजार से अधिक वर्ष पूर्व सन् 983 में पूर्ण हुई और गोम्मटसार के जीवकाण्ड की हिन्दी पद्य रचना सौ से अधिक वर्ष पूर्व सन् 1902 में अश्विन शुक्ला चतुर्थी को पूर्ण हुई। 12

19. बाबा दौलतराम वर्णी के छन्दोदय की हिन्दी पद्य रचना को देखकर पूज्य गणिनी आर्यिका ज्ञानमती माता जी, गणाचार्य विरागसागर, आचार्य विशुद्धसागर, आचार्य ज्ञानसागर, आचार्य सिद्धांतसागर, ब्र. जय निशांत प्रतिष्ठाचार्य, टीकमगढ़, ब्र. राकेश शास्त्री, सिद्धायतन, सागर, पण्डित प्रवर रतनचन्द्र जैन, भोपाल, डॉ. उदयचन्द्र जैन, उदयपुर, पण्डित श्री शिवचरणलाल जैन, मैनपुरी, प्रतिष्ठाचार्य विनोद कुमार रजवांस, डॉ. महेश जैन, भोपाल एवं डॉ. प्रमोद जैन, जयपुर प्रभृति हिन्दी साहित्य एवं जैन साहित्य के शीर्षस्थ एवं सुप्रसिद्ध विद्वानों ने घोषित किया है कि हिन्दी साहित्य की यह उत्कृष्ट एवं महत्त्वपूर्ण रचना है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पण्डित हीरालाल सिद्धांत शास्त्री ने अपने आलेख में लिखा है कि ''बाबा दौलतराम की इच्छा थी कि गोम्मटसार कर्मकाण्ड का भी पद्यानुवाद किया जाय किन्तु हम लोगों के दुर्भाग्य से यह कार्य संभव नहीं हो सका।'' 13

दो रचनाओं का वैशिष्ट्य एवं काल

पण्डित हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, ब्यावर ने सन्मति संदेश जनवरी, 1971, वर्ष 16, अंक 1 में बाबा दौलतराम जी, उनका कर्तृत्व और व्यक्तित्व के नाम से प्रकाशित आलेख में बाबा दौलतराम जी वर्णी द्वारा हिन्दी पद्य में विरचित व्रत/नियमों की पोथी, जो 37 छन्दों में है, उद्धृत की है। 14 पण्डित गोरेलाल शास्त्री, प्रधान संपादक द्वारा क्षुल्लक चिदानन्द स्मृति ग्रन्थ वीर निर्वाण संवत् 2499 सन् 1973 में महावीर जयन्ती 15.04.1973 को प्रकाशित किया गया था। इस ग्रन्थ के पृष्ठ 217 से 221 पर पण्डित हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, ब्यावर, राजस्थान (निवासी साढूमल, जिला ललितपुर, उ.प्र.) द्वारा लिखित बुन्देलखण्ड की कुछ जैन विभूतियाँ आलेख प्रकाशित किया गया। इस आलेख में बाबा जी द्वारा चौदह हिन्दी पद्यों में विरचित ग्यारह प्रतिमाओं को उद्धृत किया गया है। 15 डॉ. हीरालाल जी ने जैन संदेश में प्रकाशित अपने

आलेख में लिखा है कि उन्हें ''मध्यप्रदेश के कुछ प्राचीन शास्त्र भण्डारों को देखते हुए बाबा दौलतराम जी के हाथ की लिखी हुई 8 पन्नों की छोटी सी पोथी मिली, जिसके प्रारंभ में 2 पन्नों पर ग्यारह प्रतिमाओं का स्वरूप बाबा जी ने हिन्दी छंदों में लिखा है। उसके पश्चात 3 पन्नों में अपने द्वारा धारण किए गए व्रत-नियमों का विवरण छंदोबद्ध किया है।'' 16

बाबा जी ने ग्यारह प्रतिमाओं की चौदह छंदों में रचना और अपने द्वारा धारण किए गए व्रत-नियमों को सैंतीस छंदों में रचना पौष शुक्ला पूर्णिमा संवत् 1961 (तदनुसार 3 जनवरी, 1904 रविवार) को पूर्ण की। इसकी पुष्टि में उनके द्वारा विरचित सैंतीसवाँ छंद 17 नीचे उद्धृत किया जा रहा है-

विधु कुलगिरि हरि नियतवृष पौष धवल दिन अंत।
लिखे छंद निज दौल यह करन कंठ हित संत।।37।।

इस छंद में विधु अर्थात चन्द्र एक, कुलगिरि अर्थात पर्वत छह, हरि अर्थात देवता नौ तथा नियत वृष अर्थात् निश्चत धर्म एक अंक के सूचक हैं। इस विवरण से 1 6 9 1 चार अंक निकलते हैं। अंकों की वामगति से संवत् 1961 की गणना होती है। पौष शुक्ल पूर्णिमा संवत् 1961 तदनुसार 3 जनवरी, 1904 रविवार को यह रचना पूर्ण हुई।

बाबा जी द्वारा विरचित तेरहरचनाओं का वैशिष्ट्य एवं काल

उपरिलिखित दो रचनाओं की पूर्णता के बाद पाँच माह की अवधि में ही बाबा जी ने नैनागिरि (रेशिंदिगिरि -ऋषीन्द्रगिरि) पूजन सहित हिन्दी पद्य में अपनी तेरह छोटी-छोटी अन्य रचनाएँ ज्येष्ठ कृष्ण एकम् (प्रतिपदा) संवत् 1961 तदनुसार 30 मई, 1904 सोमवार को पूर्ण की। 18

ब्र. संदीप 'सरल', अनेकांत ज्ञान मंदिर शोध संस्थान, श्रुतधाम, बीना, जिला सागर के पुस्तकालय से बाबा दौलतराम जी वर्णी द्वारा हस्तलिखित तेरह रचनाओं की मूल प्रति मुझे प्राप्त हुई। बाबा दौलतराम वर्णी द्वारा अपनी इस हस्तलिखित पुस्तिका में नौ पूजनों, तीन स्तोत्रों - त्रैलोक्येश चतुर्विंशति जिन स्तोत्र, पंचपरमेष्ठी स्तोत्र और तरण-तारण स्तोत्र तथा द्वादशानुप्रेक्षा इस प्रकार तेरह रचनाओं को सम्मिलित किया गया है। लोक में प्रतिदिन की जाने वाली चार पूजनों - देवशास्त्र गुरू पूजन, विद्यमान विंशति तीर्थंकर पूजन, कृत्रिमाकृत्रिम जिन चैत्य पूजन और शांतिनाथ पूजन - की रचना की गयी है। चौबीस तीर्थंकरों के पाँच निर्वाण क्षेत्रों में से तीन क्षेत्रों - शिखर सम्मेद, पावापुरी और चंपापुरी - पर स्वतंत्र रूप से तीन पूजनें विरचित की गयी हैं। शेष दो क्षेत्रों कैलाश और गिरनार पर पूजन नहीं लिखी गयी है। पाँचों तीर्थंकर

निर्वाण क्षेत्रों पर समेकित निर्वाण क्षेत्र पूजन लिखी गयी है। इसके साथ ही रेशिंदिगिरि (नैनागिरि) सिद्धक्षेत्र पूजन विरचित की गयी है। यह उल्लेखनीय है कि भगवान नेमीनाथ के काल में ऋषीन्द्रगिरि (रेशिंदीगिरि) नैनागिरि से वरदत्तादि पाँच मुनिवर मोक्ष पधारे थे और भगवान पार्श्वनाथ ने नैनागिरि में आयोजित समवसरण में अपनी देशना दी थी। संभवत: इन्ही तथ्यों को ध्यान में रखते हुए दौलतराम जी वर्णी ने निर्वाण क्षेत्रों के ही समकक्ष नैनागिरि क्षेत्र को महत्त्व प्रदान किया और निर्वाण क्षेत्र की भाँति इस तीर्थ पर स्वतंत्र पूजन की रचना की।

यह उल्लेख करना उपयुक्त प्रतीत होता है कि नैनागिरि पर्वत के पीछे स्थित प्रागैतिहासिक सिद्धशिला एवं उसके शिखर में आलेखित शैलचित्रों का अनुसंधान कर देश के सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वविदों ने घोषणा की है कि ये शैलचित्र चालीस हजार वर्ष से अधिक प्राचीन और भोपाल के समीप स्थित प्रसिद्ध भीमबेटिका के शैलचित्रों के समकालीन हैं। 19

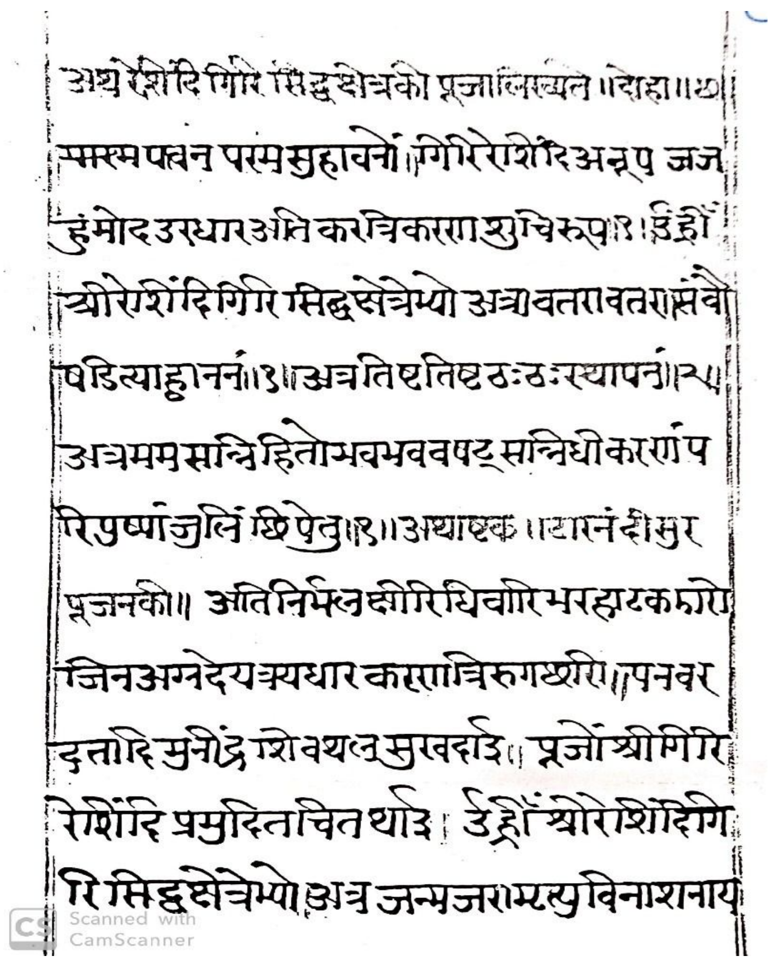
अथ रेशिंदिगिरि सिद्धक्षेत्रको पूजा लिख्यते ।दोहा।।
स्मस्म पत्तन परम सुहावनो। गिरि रेशिंदि अनूप जज
हुं मोद उर धार अति करत्रिकरण शुचिरूप।१। ॐ ह्रीं
श्री रेशिंदिगिरि सिद्धक्षेत्रेभ्यो अत्रावतरावतर संवौ
षडित्याह्वाननं।१।अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।२।
अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं प
रिपुष्पांजलिं क्षिपेत्।३।। अथाष्टक ।। ढाल नंदीश्वर
पूजनकी।। अति निर्मल क्षीरोदधि वारि भर झारक ...
जिन अग्र देय त्रयधार करण त्रिरुग्छारी।। पन वर
दत्तादि मुनींद्र शिवथल सुखदाई।। पूजों श्रीगिरि
रेशिंदि प्रमुदित चित थाई। ॐ ह्रीं श्री रेशिंदिगि
रि सिद्धक्षेत्रेभ्यो अत्र जन्मजरामृत्यु विनाशनाय

Scanned with CamScanner

बाबा जी द्वारा वर्ष 1904 में हस्तलिखित नैनागिरि-रेशिंदिगिरि पूजन का छायाचित्र

इस पुस्तिकामें सम्मिलित रचनाओं के संबंध में द्वादशानुप्रेक्षा के अंतिम तीन दोहों में से निम्नांकित दोहे में इस ग्रन्थ के पूर्ण होने की तिथि का उल्लेख किया गया है–

शशि कुलगिरि पद नियत वृष ज्येष्ठ अधिक अलितास।
प्रतिपद ज्येष्ठा रिख महीं पूरण किय सुख रास।।2।।

उपरिलिखित दोहे के प्रथम पद 'शशि कुल गिरि पद नियत वृष' में अंकित शशि अर्थात चन्द्रमा एक है। कुल गिरि अर्थात पर्वत छह हैं। पद अर्थात् पद के धारी देवता नौ होते हैं। नियत वृष अर्थात निश्चय धर्म एक है। इस प्रकार इस दोहे के प्रथम पद से चार अंकों क्रमशः – एक, छह, नौ और एक – की जानकारी मिलती है। अंकों की वाम गति के सिद्धांत से ये अंक क्रमशः एक, नौ, छह और एक हो जाते हैं। इस प्रकार इन अंकों के आधार पर विक्रम संवत् 1961 ज्ञात होता है। इस दोहे के द्वितीय और तृतीय पद से यह ज्ञात होता है कि यह रचना द्वितीय ज्येष्ठ कृष्णा एकम् (प्रतिपदा) को पूर्ण हुई। ज्येष्ठ अधिक का अर्थ है द्वितीय ज्येष्ठ। अलितास का अर्थ है भ्रमर की भाँति काला अर्थात् कृष्ण पक्ष। प्रतिपदा का अर्थ है एकम्। ज्येष्ठा रिख का अर्थ है ज्येष्ठा नक्षत्र। इस दोहे का चतुर्थ पद ग्रन्थ पूर्ण कर अनंत सुख प्राप्त करने का द्योतक है। इससे स्पष्ट है कि यह रचना द्वितीय ज्येष्ठ कृष्णा एकम् (प्रतिपदा) ज्येष्ठा नक्षत्र और वृश्चिक राशि विक्रम संवत् 1961 को पूर्ण हुई। ईसवी सन् के अनुरूप यह रचना कार्य 30 मई 1904 सोमवार को सम्पन्न हुआ। यह रचना पूर्ण करने से बाबा दौलतराम जी को अपार सुख प्राप्त हुआ।

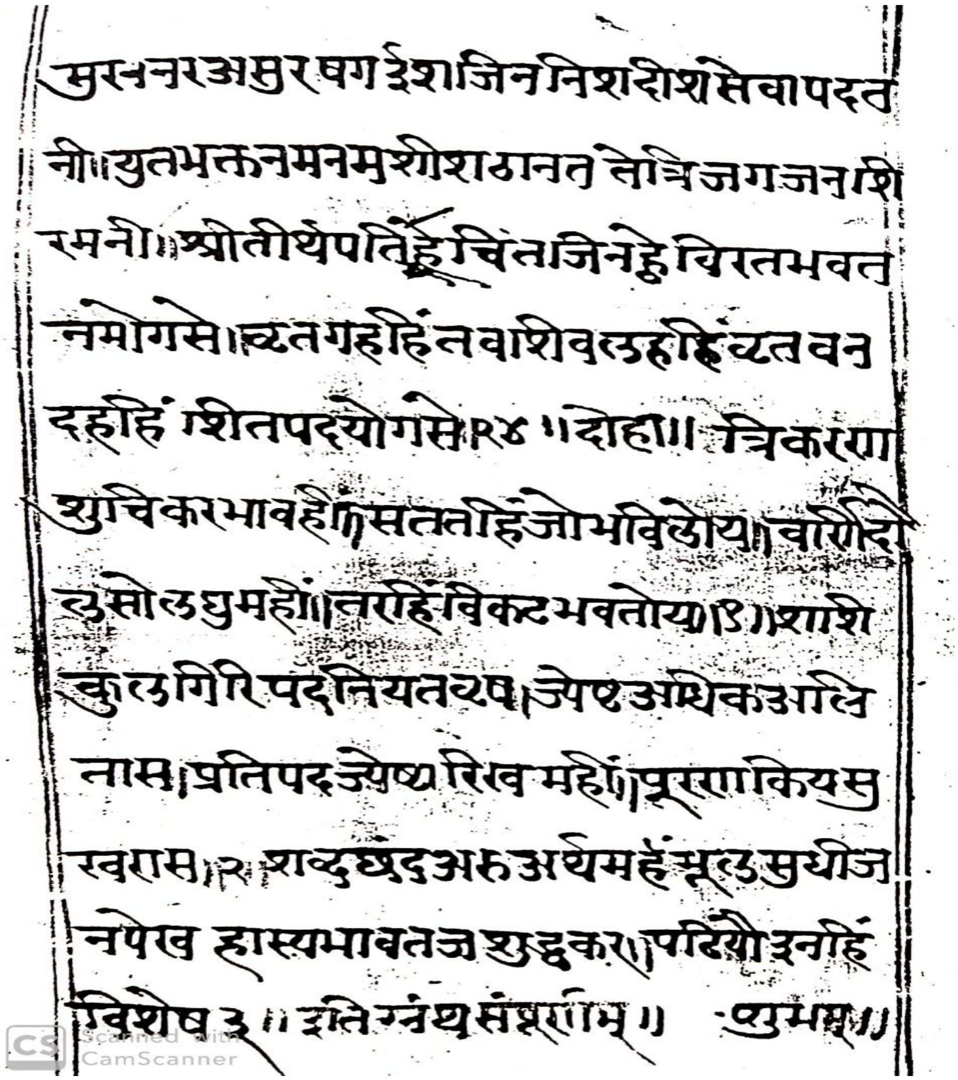

सुरनरअसुरषगईश।जिननिशदीशसेवापदत
नी।युतभक्तनमनमुशीशठानत तेत्रिजगजनशि
रमनी।श्रीतीर्थपतिहूँ चिंतजिनेहू विरतभवत
नभोगसे।च्युतगेहहिं तवाशिवलहहिं च्युतवन
दहहिं शितपदयोगसे।२४।दोहा।त्रिकरण
शुचिकरभावहीं।सततहिंजोभविलोय।वारोदो
च्युसोलघुमहीं।तरहिं विकटभवतोय।१।शशि
कुलगिरिपदनियतवष।जेष्ठअधिकआलि
नास।प्रतिपदज्येष्ठ सिखमहीं।पूरणकियसु
खरास।२ शब्दछंदअरुअर्थमहं भूलसुधीज
नपेख हास्यभावतज शुद्धकर।पढियोइनहिं
विशेष ३।इतिग्रंथसंपूर्णम्।। शुभम्।।

बाबा जी द्वारा वर्ष 1904 में हस्तलिखित द्वादश अनुप्रेक्षा के अंतिम छंदो का छायाचित्र

बाबा जी के द्वारा वर्ष 1902 से 1904 के बीच नैनागिरि में विराजमान रहकर विरचित सोलह रचनाओं में से छंदोदय 6 सितम्बर, 1902 शनिवार, ग्यारह प्रतिमाओं एवं व्रत नियमों की पोथी 3 जनवरी, 1904 रविवार और अन्य तेरह रचनाएँ 30 मई, 1904 सोमवार को पूर्ण हुई हैं। यह संयोग है या बाबा जी का पूर्व निर्णय कि तीनों श्रेणी की रचनाएँ क्रमशः शनिवार, रविवार और सोमवार को पूर्ण हुई हैं। संलग्न तालिका में इन रचनाओं के काल, उद्देश्य एवं रचना संबंधी वैशिष्ट्य को प्रदर्शित किया गया है।

बाबा दौलतराम वर्णी की सभी सोलह रचनाओं की तालिका

क्र.सं.	रचना का नाम	विषय वस्तु

1	छन्दोदय	हिन्दी पद्य में चौदह गुणस्थानों एवं चौदह मार्गणाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। यह रचना 6 सितम्बर, 1902 शनिवार को पूर्ण हुई है।
2	ग्यारह प्रतिमाएँ	चौदह हिन्दी पद्यों में ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन किया गया है। यह रचना 3 जनवरी, 1904 रविवार को पूर्ण हुई है।
3	व्रत–नियम पोथी	सैंतीस हिन्दी पद्यों में बाबा जी द्वारा लिए गए व्रत और नियमों का वर्णन किया गया है। यह रचना भी 3 जनवरी, 1904 रविवार को पूर्ण हुई है।
4	देव–शास्त्र–गुरु पूजन	यह पूजन दोहा, धत्ता तथा कवि द्यानतराय कृत नंदीश्वर पूजन की लय में लिखी गयी है। इस पूजन के अंतिम पद धत्ता में 'दौलतराम' का उल्लेख किया गया है। यह रचना 30 मई, 1904 सोमवार को पूर्ण हुई है।
5	बीस तीर्थंकर पूजन	यह पूजन दोहा तथा वसंत तिलका छंद में लिखी गयी है। जयमाला पद्धरि छंद में लिखी गयी है। यह रचना 30 मई, 1904 सोमवार को पूर्ण हुई है।
6	कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालय पूजन	यह पूजा दोहा, मोतियादाम छंद और तोटक छंद में लिखी गयी है। जयमाला के अंतिम पद में 'वर्णी कर दौल' अंकित है। यह रचना 30 मई, 1904 सोमवार को पूर्ण हुई है।
7	शान्तिनाथ पूजन	यह पूजन दोहा, वसंततिलका और पद्धरि छंद में लिखी गयी है। जयमाला की अंतिम पंक्ति में 'दौल' शब्द का उल्लेख है। यह रचना 30 मई, 1904 सोमवार को पूर्ण हुई है।
8	शिखर सम्मेद पूजन	यह पूजन दोहा, सुंदरी छंद और नंदीश्वर पूजन की लय में लिखी गयी है। जयमाला के अंतिम पद में 'वरणी दौलनमा' का उल्लेख है। यह रचना 30 मई, 1904 सोमवार को पूर्ण हुई है।
9	पावापुर क्षेत्र संबंधी श्री वीरनाथ स्वामी पूजन	यह पूजन दोहा, गीता, पद्धरि और कुसुमलता छंद में लिखी गयी है। जयमाला के अंतिम पद में 'वर्णी दौल' का उल्लेख किया गया है। यह रचना 30 मई, 1904 सोमवार को पूर्ण हुई है।
10	चंपापुर क्षेत्र संबंधी वासुपूज्य स्वामी पूजन	यह पूजन दोहा, पद्धरि छंद और नंदीश्वर पूजन की लय में विरचित की गयी है। जयमाला के बाद दोहे के द्वितीय पद में

		'वर्णी दौल' लिखा गया गया है। यह रचना 30 मई, 1904 सोमवार को पूर्ण हुई है।
11	रेशिंदि गिरि सिद्धक्षेत्र पूजन	यह पूजन नंदीश्वर पूजन की लय, दोहा और पद्धरि छंद में लिखी गयी है। दोहा के पूर्व और जयमाला की अंतिम पंक्ति में 'वर्णी दौलत' का उल्लेख किया गया है। यह रचना 30 मई, 1904 सोमवार को पूर्ण हुई है।
12	निर्वाण क्षेत्र पूजन	इस पूजन की रचना दोहा, गीताछंद और पद्धरि छंद में की गयी है। जयमाला के अंतिम पद किन्तु दोहा के पूर्व में 'वर्णी दौल' शब्द अंकित किया गया है। यह रचना 30 मई, 1904 सोमवार को पूर्ण हुई है।
13	त्रैलोक्येश चतुर्विंशति जिन स्तोत्र	यह स्त्रोत शार्दूलविक्रीडित छंद में है। इस स्त्रोत के अंतिम पद में 'दौलतर' शब्द का उल्लेख है। यह रचना 30 मई, 1904 सोमवार को पूर्ण हुई है।
14	पंच परमेष्ठी स्त्रोत्र	यह स्त्रोत वसंत तिलका तथा शार्दूलविक्रीडित छंद में है। अंतिम पंक्ति में 'दौलवरणी' शब्द का उल्लेख है। यह रचना 30 मई, 1904 सोमवार को पूर्ण हुई है।
15	तरण-तारण जिन स्तोत्र	इस स्तोत्र के प्रारंभ में तरण-तारण शब्द द्वय के आधार पर लेखक द्वारा इसका नामकरण तरण-तारण स्तोत्र किया गया है। दिया गया है। यह स्तोत्र गीतिका छंद में लिखा गया है। इस स्तोत्र के अंतिम पद के उत्तरार्द्ध में 'वर्णि दौलत' शब्द अंकित है। यह रचना 30 मई, 1904 सोमवार को पूर्ण हुई है।
16	द्वादश अनुप्रेक्षा	द्वादशानुप्रेक्षा के प्रारंभ में एक दोहा, 24 गीता छंद और अंत में तीन दोहे सम्मिलित हैं। इसके अंत में स्थित प्रथम दोहे में 'वर्णि दौल' शब्द अंकित है। यह रचना 30 मई, 1904 सोमवार को पूर्ण हुई है।

बाबा जी द्वारा अपनी रचनाओं में रेशिंदिगिरि (नैनागिरि) सिद्धक्षेत्र पूजन अन्य निर्वाण क्षेत्रों की पूजन के साथ-साथ विरचित की गयी है। बाबा जी की प्रेरणा से नैनागिरि में सन् 1902 में बाबा दौलतराम वर्णी पाठशाला स्थापित की गयी। श्री गणेश प्रसाद जी वर्णी बाबा दौलतराम जी वर्णी के साथ नैनागिरि तथा अन्य ग्रामों में रहे हैं। पूज्य गणेश प्रसाद जी वर्णी ने अपनी जीवन गाथा में विभिन्न स्थलों पर बाबा

दौलतराम के संबंध में अनेक घटनाओं का उल्लेख करते हुए उनकी अत्यधिक सराहना की है। गणेश प्रसाद जी वर्णी ने यह भी उल्लेख किया है कि बाबा दौलतराम वर्णी कवि थे। गणेश प्रसाद जी वर्णी ने स्व. बाबा दौलतराम की प्रशंसा करते हुए स्पष्ट लिखा है कि उन्होंने ''उस समय लोगों का चित्त विद्यादान की ओर आकर्षित किया था। अत: मेरी उनके प्रति श्रद्धा हो गयी।'' 20

बाबा जी का जन्म बम्हौरी में नैनागिरि तीर्थ के जीर्णोद्धारक श्यामले ब्या के परिवार में हुआ और उनका समाधिमरण वर्ष 1907-08 में नैनागिरि में हुआ। उनकी स्मृति में पूज्य गणेश प्रसाद जी वर्णी की प्रेरणा से नैनागिरि में पर्वत पर समाधि स्थल बनाया गया है। बाबा जी ने अपने लेखन, पठन और पाठन से नैनागिरि तीर्थ को साहित्यिक एवं शैक्षणिक स्वरूप प्रदान किया है।

श्री गणेश प्रसाद जी वर्णी बाबा दौलतराम जी वर्णी के साथ अनेक अवसरों पर नैनागिरि में रहे हैं। उन्होंने गोम्मटसार को छंदोबद्ध किया किन्तु यह रचना अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है। उनके द्वारा विरचित अनेक पूजाएँ और भजन प्रसिद्ध रहे हैं। उनकी पद्य रचनाएँ सरस और मार्मिक है। नैनागिरि पहुँचने पर उन्होंने बाबा दौलतराम के समाधिमरण की चर्चा सुनी। इससे उन्हें बहुत दु:ख हुआ। बाबा दौलतराम जी वर्णी के गुरु बाबा शिवलाल जी ग्राम सिरसी, जिला ललितपुर के रहने वाले थे। उनकी समाधि रतलाम में हुई थी। गणेश प्रसाद जी वर्णी की प्रेरणा से बाबा दौलतराम की स्मृति में नैनागिरि में पर्वत पर समाधिस्थल बनाया गया है। मेरे गुरूणां गुरु वर्णी-द्वय को शत शत प्रणाम।

इस आलेख में वर्णित उपरिलिखित सभी तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि सभी सोलह रचनाएँ नैनागिरि तीर्थ पर ही पूर्ण हुई हैं। हिन्दी पद्य साहित्य में दौलतराम नाम के एक से अधिक हिन्दी कवि हुए हैं। अत: इस आलेख के शीर्षक में बाबा दौलतराम के साथ 'नैनागिरि' लेखक ने जोड़ दिया है, जिससे उनके नाम और अवदान के संबंध में किसी प्रकार की भ्रान्ति न हो।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती द्वारा रचित गोम्मटसार, भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा द्वितीय संस्करण के रूप में चार भागों में सन् 1997 में प्रकाशित। प्रथम भाग की प्रस्तावना पृष्ठ 13
2. देखें संदर्भ 1 पृष्ठ 14
3. देखें संदर्भ 1 पृष्ठ 1

4. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग दो, लेखक क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित नवम संस्करण, 2010, पृष्ठ 245
5. देखें संदर्भ 4 भाग तीन, पृष्ठ 296
6. अर्हत वचन, जून, 2015 मानद संपादक डॉ. अनुपम जैन, प्रकाशक डॉ. अजित कुमार सिंह कासलीवाल, अध्यक्ष कुन्द कुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गॉधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर, म.प्र. पृष्ठ 13 से 17
7. छन्दोदय (जीवकाण्ड-वृत्ति) (हस्तलिखित) क्र. 314 दिनाँक 8.3.1968 श्री ऐलक पन्नालाल दिगंबर जैन सरस्वती भवन, ब्यावर (राजस्थान)
8. देखें संदर्भ 7 पृष्ठ 1
9. देखें संदर्भ 7 पृष्ठ 315
10. देखें संदर्भ 7 पृष्ठ 315
11. नैनागिरि दर्शन, सुरेश जैन (आई.ए.एस.), श्री दिगंबर जैन सिद्धक्षेत्र, नैनागिरि न्यासी मण्डल, समिति एवं सहस्राब्दी पंचकल्याणक समारोह समिति द्वारा नैनागिरि सहस्राब्दी समारोह (1050-2014) के अवसर पर प्रकाशित। प्रथम संस्करण पृष्ठ 11
12. देखें संदर्भ 7 पृष्ठ 317
13. पण्डित गोरेलाल शास्त्री, प्रधान संपादक द्वारा क्षुल्लक चिदानन्द स्मृति ग्रन्थ वीर निर्वाण संवत् 2499 सन् 1973 में महावीर जयन्ती 15.04.1973 को प्रकाशित किया गया था। इस ग्रन्थ के पृष्ठ 217 से 221 पर पण्डित हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, ब्यावर, राजस्थान (निवासी साढ़ूमल, जिला ललितपुर, उ.प्र.) द्वारा लिखित बुन्देलखण्ड की कुछ जैन विभूतियाँ आलेख प्रकाशित किया गया। इस आलेख में बाबा दौलतराम जी वर्णी, नैनागिरि द्वारा 14 छन्दों में विरचित ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन किया गया है।
14. पण्डित प्रकाशचन्द्र जैन, संपादक द्वारा दिल्ली से प्रकाशित सन्मति संदेश वर्ष 16 अंक 1 जनवरी, 1971 में प्रकाशित पण्डित हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, ब्यावर, राजस्थान (निवासी साढ़ूमल, जिला ललितपुर, उ.प्र.) का आलेख - बाबा दौलतराम जी, उनका कर्तृत्व और व्यक्तित्व पृष्ठ 24 से 28। इस आलेख में बाबा दौलतराम जी वर्णी, नैनागिरि द्वारा 37 छन्दों में विरचित उनके व्रत-नियमों का वर्णन किया गया है।
15. देखें संदर्भ 10
16. देखें संदर्भ 14

17. देखें सदंर्भ 14 पृष्ठ 28
18. अनेकांत ज्ञान मंदिर शोध संस्थान, श्रुत धाम बीना, जिला सागर, संरक्षक ब्र. संदीप सरल, में संगृहीत बाबा दौलतराम वर्णी द्वारा विरचित तेरह हस्तलिखित रचनाएँ।
19. देखें संदर्भ 11, पृष्ठ 9 एवं टाईम्स ऑफ इण्डिया शुक्रवार, 7 फरवरी, 2014, हिन्दुस्तान टाइम्स, सोमवार, 10 फरवरी, 2014, दैनिक भास्कर, मंगलवार, 4 फरवरी, 2014 एवं शुक्रवार 7 फरवरी, 2014
20. मेरी जीवन गाथा द्वारा पूज्य श्री 105 क्षुल्लक गणेश प्रसाद जी वर्णी प्रस्तावना लेखक श्रीमान् पण्डित द्वारका प्रसाद जी मिश्र, गृह मंत्री, मध्यप्रान्त, प्रकाशक श्री गणेश प्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला, भदैनी घाट, काशी, ग्रन्थ माला संपादक और नियामक पण्डित फूलचन्द्र जी सिद्धांतशास्त्री द्वितीया वृत्ति श्रावण कृष्ण प्रतिपदा वीर निर्वाण संवत् 2485 सन् 1949.

बाबा दौलतराम वर्णी की रचनाएँ

1

देव शास्त्र गुरु पूजन

।। ऊँ नमः सिद्धेभ्यः।।

(दोहा)

चतु घति जित जिन कथित जिन, श्रुत युत स्यात्पद चिन्न।

निरख परख गुरु पद जजौं, उपधि द्वंद कर भिन्न।।1।।

ऊँ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

।। अथाष्टक।।

(नंदीश्वर पूजन की लय)

मृतु जन्म जरा दुखदाय, नाशन मणिकारी।

भर शीतल वारि मँगाय, त्रस बिन तृष हारी।।

जिन अठदस दोष विमुक्त, शास्त्र जिनोक्त सही।

अरचौं गुरु रत्नत्रि युक्त, ग्रंथ दुभेद जही।।

ऊँ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

तप तपन तपन जित भूर, संसृति तपताई।

तिहिं शमन सुरभ्य प्रपूर, चंदन घिस लाई।। जिन।।

ऊँ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षय क्षय पद धर धर हीन, हैं दुख अमित भरे।

तिन खपन अखण्डित वीन, तंदुल लेय खरे।। जिन।।

ऊँ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

गद सुमन सुमन भ्रम रूप, कारक सुधहारी।

तिहिं दमन सु शमन अनूप, ले तरु अमरारी।। जिन।।

ऊँ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रद क्षुध गद अपद अमान, भानन मान वरा।

तिहिं हरन सद्य पकवान, विविध प्रकार करा।। जिन।।

ऊँ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मिथ्यातम घट घट छाय, स्व पर विवेक हर्यौ।
तसु नाश करन शुचि ल्याय, दीप अमौल्य खर्यौ।। जिन।।
ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
भट अष्ट प्रबल अरि स्वाम, पेरत भव भव में।
बल भ्रष्ट करन तिन नाम, धूप लिये अब मैं।। जिन।।
ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो दुष्टाष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
भ्रम चतु गति करणज कुंज, फल लिय अथित सदा।।
तिन हनन अचित फल पुंज, लै वर शिव फलदा।। जिन।।
ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।
संसार असार मँझार, भ्रम बहु दुःख पायो।
तिहिं भंजन काज अवार, वसु विध सज ल्यायो।। जिन।।
ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

।। अथ जयमाल।।

(दोहा)

जिन श्रुत गुरु पद पद नमहिं, कर चित अलि सम रक्त।
वरणौं कछु गुणमाल तिन, धर कर उर वर भक्त।।

(पद्धरि)

जय जय जित घाति चतुष्क ईश, पद नम नर सुर मुनि गण फणीश।
युत अमित चतुष्टय त्रिजग देव, युगपत सब ज्ञेयन लखन भेव।।
जय वीतराग सब दोष मुक्त, छ्यालीस प्रभृति गुण अमित युक्त।
दिनकर सम राजित व्योम थान, वर समवशरण महिं शोभवान।।
सिर प्रवर छत्र त्रय दिपत श्वेत, इहविध विहरत जिन आर्य खेत।
निज वानि सुधाकर भव्य धान, पोखत मोखत रुग जन्मवान।।
सोही जिन ध्वनि धर उर मँझार, गणराज रचित द्वादश प्रकार।
भवि जीवन सुर शिव शर्म दान, अनुयोग रचो गर्भित महान।।
स्यात्पद मुद्रित वर विविध रूप, पूरण पूरण विध मर्म कूप।
परवादि महीधर वज्रदंड, संशय तम भंजन मारतण्ड।।
भवदधि जल तारण तरणि खाम, बिन कारण सब हितु गुणन धाम।

आचार पंच आचरण हार, श्रुत जलधि पारगामी उदार।।
दिक्षा शिक्षा दायक दयाल, आचारज पद मंडित विशाल।
जिय भ्रमत भवारण दुखित जान, दरशावत पथ प्रद सुख अमान।।
पद उपाध्याय धरते मुनीश, वंदौं पुन पद बिन स्वगुण धीश।
शिव पद साधक त्रय रत्न लीन, प्रणमौं मुनि संसृति भाव हीन।।

(धत्ता)

अरहंत जिनेशं अमित गुणेशं, रचित गणेशं शास्त्र वरं।
वर सूरिपदीशं पाठकईशं, मुनि पद शीशं दौल धरं।।

।। इत्याशीर्वाद:।।

2

बीस तीर्थंकर पूजन

(दोहा)

पूरब अपर विदेह पन, विद्यमान जिनराय।
तिन सबको इत थापकर, जजौं शीर्ष भुवि लाय।।

ऊँ ह्रीं श्रीसीमन्धरयुग्मन्धरस्वाम्यादि-विंशतिजिनेश्वरसमूह! अत्रावतरावतर संवौषडित्याह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

।। अथाष्टक।।

(वसंततिलका)

सौरभ्य नीर सम क्षीर मँगा पवित्री,
हेमीय कुंभ भर धार त्रिदे धरित्री।
श्री तीर्थ ईश जिन बीस विदेह थानी,
अर्चौं स्वथान रुचि ठान विभान मानी।।1।

ऊँ ह्रीं श्रीसीमन्धरयुग्मन्धरस्वाम्यादि-विंशतिजिनेश्वरेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

संश्रत्य ताप हर शीतल वस्तु सारी,
पीती पवीत वर केसर संग गारी।।श्री तीर्थ।।2।।

ऊँ ह्रीं श्रीसीमन्धरयुग्मन्धरस्वाम्यादि-विंशतिजिनेश्वरेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षै पदीय प्रद अक्षत सुच्छराई,
मुक्ताफलेंदु सम श्वेत स्वहेत लाई।।श्री तीर्थ।।3।।

ऊँ ह्रीं श्रीसीमन्धरयुग्मन्धरस्वाम्यादि-विंशतिजिनेश्वरेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्पी विथा प्रहन पुष्प सुराल याने।
वृक्षी उपाय अथवार्जुन हेमवाने।।श्री तीर्थ।।4।।

ऊँ ह्रीं श्रीसीमन्धरयुग्मन्धरस्वाम्यादि-विंशतिजिनेश्वरेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

द्रव्याधिमान मधुरान रसान पुर्त्ती,
नैवेद्य सद्य वर शुद्ध बनाय तुर्त्ती।। श्री तीर्थ।।5।।

ऊँ ह्रीं श्रीसीमन्धरयुग्मन्धरस्वाम्यादि-विंशतिजिनेश्वरेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अज्ञान घान तम भान समान भानी,

भावान रत्न मय दीप शुभान आनी।। श्री तीर्थ।।6।।

ऊँ ह्रीं श्रीसीमन्धरयुग्मन्धरस्वाम्यादि-विंशतिजिनेश्वरेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कालागुरादि वर द्रव्य सुगंध भीनी,

ते पूर्ण चूर्ण कर धूप अरी दहीनी।।श्री तीर्थ।।7।।

ऊँ ह्रीं श्रीसीमन्धरयुग्मन्धरस्वाम्यादि-विंशतिजिनेश्वरेभ्यः अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पक्वे रसार्द्रित मनोहर सुक्व वेई,

अक्षान प्रीय फल वांछित दातृ लेई।।श्री तीर्थ।।8।।

ऊँ ह्रीं श्रीसीमन्धरयुग्मन्धरस्वाम्यादि-विंशतिजिनेश्वरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

दग्गंध आदि वसु द्रव्य मिला समस्तं,

सद्भाव युक्त कर अर्घ महाप्रशस्तं।।श्री तीर्थ।।9।।

ऊँ ह्रीं श्रीसीमन्धरयुग्मन्धरस्वाम्यादि-विंशतिजिनेश्वरेभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

।। अथ जयमाल।।

(दोहा)

सुर नर मुनि सेवत सतत, जिन पद पद्म विशाल।

भिन भिन तिन गुणधर स्व हृदि, गाऊँ वर जयमाल।।

(पद्धरि)

जय जय श्री सीमंधर जिनेश, जय युगमंधर पद नुत सुरेश।

श्री बाहु सुबाहु जगत्रि तार, प्रणमौं विदेह जंबू मँझार।।1।।

संजात स्वयं प्रभु गुणन धाम, रिषिभानन वीर्य अनंत स्वाम।

श्री सूरी प्रभुय विशाल देव, जिन वज्रनाथ विधि वज्र एव।।2।।

चंद्रानन चंद्रानन ऋषीश, थिर खंड धातकी द्वीप दीश।

जय चंद्रबाहु श्री भुयँग नाथ, ईश्वर नम प्रभु पद नाय माथ।।3।।

जय जय जगतेश्वर वीरसेन, महँभद्र देव जस विकल एन।

श्री अजितवीर्य जगत्रये नाँह, विहरत वर पुष्कर अर्द्ध माँह।।4।।

युत समवसरण कमला ललाम, दृग ज्ञान वीर्य सुख अमित धाम।

त्रैलोक्य त्रिकालिक सर्व गेय, इक उडु सम युगपत लखत जेय।।5।।

संसार खार बिन पार वार, तारण कारण तारीय सार।

वर्णन विरलन बिन स्व धुनि मेय, देशत जिनपति भविजन अमेय।।6।।

तन शुभन तुंग शत पंच दंड, जिहिं लखत लजत शशि मारतण्ड।
थिति कोड़ पूर्व मित धरहिं ईश, जय जय जय सो श्री त्रिजग शीश।।7।।

(दोहा)

जो भविजन मन हर्ष धर, वर्तमान जिनराय।
जजै वर्णि जग जजित पद, सो सुधि लघु महिं पाय।।8।।

।। इत्याशीर्वादः।।

3

कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालय पूजन

(दोहा)

या जग मंदिर में लसैं, जे जिन मंदिर सार।

कृतमाकृतम चितार ते, जजहुँ त्रियोग सम्हार।।

ऊँ ह्रीं त्रिलोकसम्बन्धि-कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसमूह! अत्र अवतरावतर संवौषडित्याह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

।।अथाष्टक।।

(मोतियादाम)

शुची अति पीर हरी तृष वार,

मगारुग नाशि त्रिदै त्रय धार।

त्रिलोक बतीस वजे जिनधाम,

जजौं भवफंद निकंद ललाम।।1।।

ऊँ ह्रीं त्रिलोकसम्बन्धि-कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भवातप नाशन चंदन ल्याय,

सुंगंधित केसर संग घिसाय।। त्रिलोक।।2।।

ऊँ ह्रीं त्रिलोकसम्बन्धि-कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अखंडित नव्य मगाक्षत श्वेत,

जिती द्युति इंदु पदाक्षय हेत।। त्रिलोक।।3।।

ऊँ ह्रीं त्रिलोकसम्बन्धि-कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

वशीकर भृंग हृषीक अनंग,

द्रुमामर पुष्पहिं लेय उमंग।। त्रिलोक।।4।।

ऊँ ह्रीं त्रिलोकसम्बन्धि-कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुधामय नाशन मोद उपाय,

लिये शुचि नेवज सद्य कराय।। त्रिलोक।।5।।

ऊँ ह्रीं त्रिलोकसम्बन्धि-कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभंजन अज्ञ तमावलि भीम,

सँजो मणिदीप द्युतीश असीम।। त्रिलोक।।6।।

ऊँ ह्रीं त्रिलोकसम्बन्धि-कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अरींधन अष्ट दहीनि अनूप,

खिपौं दव भाव मही वर धूप।। त्रिलोक।।7।।

ऊँ ह्रीं त्रिलोकसम्बन्धि-कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयेभ्यः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अनौपम शुष्क रसार्द्रित वेय,

महाफल मोक्षप्रदो फल लेय।। त्रिलोक।।8।।

ऊँ ह्रीं त्रिलोकसम्बन्धि-कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

मिला वसु द्रव्य जलादिक सार,

उपा वर भक्ति भरा हिम थार।। त्रिलोक।।9।।

ऊँ ह्रीं त्रिलोकसम्बन्धि-कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयेभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

।। अथ जयमाल।।

(दोहा)

मिथ्यातम दम रवि सहज, सुदृगोत्पत्ति उपाय।

जिनागार युत चैत सब, कहुँ तिन आरति गाय।।1।।

(तोटक)

जय सर्व अलोक अनंत भनों, बिन मूरति भाजन रूप गनों।

तिहिं मध्य असंख्य प्रदेश धृती, यह लोक अकीर्तम जान मती।।1।।

नहिं धर्तृ न हर्तृ य कोई तिहीं, कहँ ऊर्द्ध अधो मध भेद त्रिही।

वर द्वंद्व मृदंग अकार समा, सब राजु त्रिसैं तिय ताल पमा।।2।।

दिश उत्तर दक्षिण सर्व थलैं, लख सप्तहिं सप्त सु राजु भलैं।

पुन पूरव पश्चिम दोय दिशै, अध सप्तहिं राजु प्रमान लसै।।3।।

मध एक सुरालय वृंद महीं, पन राजू इकै शिरलोक ठहीं।

पुन तुंग चतुर्दश राजु अहै, त्रय वात वलै कर वेष्टित है।।4।।

जिय पुद्गल आदिक द्रव्य छहौं, तिन पूरित श्री जिनराज कहौ।

तहँ लोक अधो सुर भोनपती, निवसैं तिन थानन माहिं मती।।5।।

सब सप्त करोड़ जिनेंद्र लहा, युत लक्ष बहत्तर जान महा।

मध लोक महीं सब चार शती, दस चार गुणें चतु दोय युती।।6।।
पुन लक्ष असी चतु सप्त नवै, सहसै अरु तेइस ऊर्ध भवै।
इक अष्ट चतुष्करू सप्त सही, नव छप्पन अष्ट कहै सबही।।7।।
इक एक महीं प्रतिमा वरणी, शत अष्ट अधिक्य जिनेंद्र तनी।
वसु चौ नव सप्त दु तीन पचै, पन द्वे नव ते सब हीय जचै।।8।।
पुन योतिषि वानन थान महे, गणना बिन धाम जिनेश कहै।
तिनमें सब जे जिनबिंब लसैं, अरचौं तिनको जिम एन नसै।।9।।
अरु गंग द्रहादिक माहिं भनी, प्रतिमा पुन श्री जिनराज तनी।
सब पंचशती धनु राजतु है, वर आसन पदमु विराजतु है।।10।।
लख रत्न द्युती निश घोषपती, छिपि कोटि प्रभाकर जात अती।
कृत मानुष संख्य प्रमान सही, वरनै पुन भौन नृलोक मही।
तिनमें प्रतिमा पन वर्ण धरै, निवसै जिन दर्शन विघ्न टरै।।11।।
उरगेश नरेश सुरेश हरी, हलि आदि जजैं नित भक्ति धरी।
प्रद स्वानंद पूरित शर्म छितं, लख में भव अंबुधि तर्ण हितं।।12।।
धर भक्त पदांबुज रक्त अली, सम ह्वै तिन सेव्य करूँ सु भली।
मन मोद उपा तज मान मदा, वर्णी कर दौल स्व चाह सदा।।13।।

(दोहा)

जो भवि जन ह्वै रक्त अति, जजहिं सतत शुचि होय।
सो नर सुर पति शर्म लह, लह शिव तर भव तोय।।14।।

।। इत्याशीर्वादः।।

4

शान्तिनाथ पूजन

(दोहा)

भव तप शांतक शांत पद, प्रद नुत शत शक्रेश।

परम शांत मुद्रा निरखि, पूजौं शांति जिनेश।।

ऊँ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्र! अत्रावतरावतर संवौषडित्याह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

।। अथाष्टक।।

(वसन्ततिलका)

क्षीराब्धि नीर शुचि पीर तृषा निवारी,

लै कुंभ हेम भर धार त्रि भूमि धारी।

तीर्थेश चक्र मकरेश पदी त्रिधारी,

अर्चौं पदाब्ज जिन शांति जगत्रि तारी।।

ऊँ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

संसार ताप हर तार सुरभ्य वेई,

गोशीर नीर मध मार पवित्र लेई।। तीर्थेश।।

ऊँ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नेंदु कुंद सम श्वेत महीन बीने,

गंधी अखंड वर तंदुल लै नवीने।। तीर्थेश।।

ऊँ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कल्पद्रुमीय अलि कुंजन रंजनीया,

लै पुष्प पुष्प गद चंड विहंडनीया।। तीर्थेश।।

ऊँ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नैवेद्य सद्यवर पद्यत सेवनाई,

मिष्टान्न वान शुचि हीन जलाद्रिताई।। तीर्थेश।।

ऊँ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीमति स्वाहा।

मिथ्यांधकार हर मैल विहीन जोई,

रत्नीय दीप हिमपात्र महीं सँजोई।। तीर्थेश।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कृष्णागरादि वर गंधित द्रव्य सारी,

सो चूर धूप कर क्रूर दुचार जारी।। तीर्थेश।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम आदि फल प्रासुक जोय लाई,

भावान युक्त वर मोक्ष फल प्रदाई।। तीर्थेश।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

तोयादि अंत फल द्रव्य मिलाय सारी,

हेमीय भाजन भराय प्रमोद धारी।। तीर्थेश।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाह।

।। अथ जयमाल।।

(दोहा)

करम भरम तम दमन रवि, भ्रमण तपन हरिचंद।

शांतिनाथ गुणमाल कछु, कहुँ प्रद जगदानंद।।

(पद्धरि)

जय जय भवदधि तारण तरंड, तम अज्ञ विनाशक तरणि चंड।

षट दशम तीर्थकर्ता जिनेश, रतिपति दुदशम द्युति जित दिनेश।।

हे पंचम चक्रपती विशाल, षट् खंड महीपाली दयाल।

नृप नमत सहस बत्तीस पाय, नव निधि चतु दस रतनेश थाय।।

अमरोपनीत भुगते सुभोग, तिय सहस छ्यानवै युत मनोग।।

दस अष्ट कोड़ हय तेजवंत, गज लक्ष असी चतु के महंत।।

सम तनुज मोह चारित बसाय, वर मुकुट बंध जस गाय गाय।

लह योग चित्त वैराग धार, त्यागी कमला तृण सम विचार।।

व्रत धरत मुहूरत अंत माहिं, तुरि बोध उपायो श्री जिनाहिं।

कर उग्र उग्र तप वर विधान, कीनी विध निर्जर श्रेणिवान।।

गुण दुदशम चरम समय मँझार, मण्डित श्री अंतर शर्मकार।

तब ही भू से पन सहस दंड, निवसै नभ महिं जिम मारतण्ड।।

श्री समवशरण तब धनद देव, कीनी वर गंध कुटी सहेव ।
जहँ तरु अशोक राजित विशाल, जिहिं लखत नशत सब शोक जाल।।
सिंहासन अंबुज गर्भ देश, श्री अंतरीछ राजित जिनेश।
शिर श्वेत छत्र त्रय शोभवंत, त्रैलोक्य स्वाम सूचक दिपंत।।
भामंडल द्युति जित कोटि सूर, दर्शन ता मध भव सप्त पूर।
अक्षर बिन संशय हरन बान, है सर्व ज्ञेय दर्शक महान।।
सुर सुमन वृष्टि ह्वै व्योम सेय, शिर ढुरत चमर व्रज अनुपमेय।
बाजत दुंदुभि ध्वनि मधुरवान, सब जीवन श्रवणानंद दान।।
मुनि आदि सभास्थी दुदश भेय, ह्वै रहे भ्रमर पद पदन केय।
इत्यादि बाह्य लक्ष्मी समेत, विहरे श्री जिनवर आर्य खेत।।
पुन अघति घात जिन त्रिजग शीश, निवसैं ह्वैकर गुण अमित ईश।
तहँ अमल अकल अविचलित होय, रहँ काल अनंतानंत जोय।।
सोही पदते श्री जगत तार, मोऊ पर करुणा बुद्धि धार।
दीजे लखकर निज भृत्य दौल, कछु अवर नाहिं चाहत अतौल।।

(दोहा)

शांतिनाथ पद पदन जो, पूजै मन हरषाय।
सो त्रिजगत तप शांत कर, शांत स्व थल पद पाय।।

।। इत्याशीर्वादः।।

5

शिखर सम्मेद पूजन

(दोहा)

सब तीर्थन शिर मुकुट मणि, जम्बू भरत मँझार।
श्री सम्मेदाचल सदा, जजौं हर्ष उर धार।।

ऊँ ह्रीं शिखरसम्मेदसिद्धक्षेत्रसमूह! अत्रावतरावतर संवौषडित्याह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

।। अथाष्टक।।

(सुन्दरी)

सलिल चित्त मुनी जिम सीयरा, भर हिमी घट धार त्रिदे धरा।
गिरि सम्मेद जजौं मन ल्यायकैं जिन क्रमांबुज शीश नवायकैं।।

ऊँ ह्रीं शिखरसम्मेदसिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

उदक संग सु चंदन शीतलं, घिस भवातप हारक प्रीतिलं।। गिरि सम्मेद।।

ऊँ ह्रीं शिखरसम्मेदसिद्धक्षेत्रेभ्यः संसारतापविनाशाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

सित अखंडित तंदुल लेयकैं, नव महीन सुगंधित वेयकैं।। गिरि सम्मेद।।

ऊँ ह्रीं शिखरसम्मेदसिद्धक्षेत्रेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सुमन ले सुर वृक्ष तनै खरे, सुरभि तीर जती जिमि वा करै।। गिरि सम्मेद।।

ऊँ ह्रीं शिखरसम्मेदसिद्धक्षेत्रेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सरस नेवज सद्य सु कीजिये, हिम रकाबिन माहिं भरीजिये।। गिरि सम्मेद।।

ऊँ ह्रीं शिखरसम्मेदसिद्धक्षेत्रेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रतन दीप अमौल्य सुहावनों, तिमिर मोह विनाशक लावनों।। गिरि सम्मेद।।

ऊँ ह्रीं शिखरसम्मेदसिद्धक्षेत्रेभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दश विधी कर धूप सुहावनी, परमली विध कंज जरावनी।। गिरि सम्मेद।।

ऊँ ह्रीं शिखरसम्मेदसिद्धक्षेत्रेभ्यः दुष्टाष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सरस प्रासुक लै फल पावने, परम पक्व सुचक्व सुहावने।। गिरि सम्मेद।।

ऊँ ह्रीं शिखरसम्मेदसिद्धक्षेत्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फलाठहुँ द्रव्य मिलाय जी, अरघ लै उर हर्ष बढ़ाय जी।। गिरि सम्मेद।।

ऊँ ह्रीं शिखरसम्मेदसिद्धक्षेत्रेभ्य: अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्विपामीति स्वाहा।

।। अथ जयमाल।।

(दोहा)

जिन जिन थल जिन जिन प्रहन, विधि गण हुव शिव ईश।
तिन गुण की जयमाल अब, वरणौं नमि निज शीश।।

(नंदीश्वर पूजन की लय)

श्री कूट सिद्ध वर मेय जीत अजीत अरी,
लख सर्व चराचर ज्ञेय शिव तिय अजित वरी।
सो तीर्थराज सुख दाय गिरि सम्मेद मही,
वंदौं अति हर्ष उपाय मन वच काय सही।।1।।
श्री दत्त कूट थिर योग कर संभव स्वामी।।
पायौ शिव धाम मनोग अविचल सुख धामी।। सो तीर्थराज।।2।।
अभिनंदन अघति निवार जहतैं शिवपाई,
सो कूटानंद चितार वंदौं हर्षाई।। सोतीर्थराज।।3।।
वृष दुविध अमिय बरसाय सुमति जिनेश जये,
विधि चतु अविचल थल आय अविचल धाम थये।। सो तीर्थराज।।4।।
श्री मोहन कूट ललाम पद्म प्रभु आई,
अनुपम सुखदा शिव वाम निज संपति पाई।। सो तीर्थराज।।5।।
श्री कूट प्रभासहिं नाथ आय सुपार्श्व हरे,
विधि शत्रु भुवनत्रय माथ निवसै गुणन भरे।। सो तीर्थराज।।6।।
श्री चंद्रप्रभु जगदीश बोधत भव प्राणी,
आ ललित कूट के शीश पाई शिवरानी।। सो तीर्थराज।।7।।
लख सुप्रभ कूट महान वंदौं हर्ष हिया,
जहँ से विधि सुविध जयान जग शिर वास किया।। सो तीर्थराज।।8।।
श्री विद्युत प्रभुवर धाम शीतल जिनराई,
परणी शिवतिय जग स्वाम हन भव तपताई।। सो तीर्थराज।।9।।
आ संकुल कूट जिनेश पाई मुक्ति विभू,
हन कर्म अघातिय शेष श्री श्रेयांस प्रभू।। सो तीर्थराज।।10।।

श्री शांकुल कूटहिं ध्याय निज आतम छीने,
विध अघति विमल जिनराय विमल स्वरस भीने।। सो तीर्थराज।।11।।
वर कूट स्वयंभू सेय देव अनंतलई,
कर विधि शत्रुन बलखेय निज श्री शर्म मई।। सो तीर्थराज।।12।।
श्री धर्मनाथ जगतार धर्म जिहाज खरे,
शिर कूट सुदत्त प्रहार विध पग मुक्ति धरे।। सो तीर्थराज।। 13।।
श्री शांतिनाथ जिनराज कूट प्रभास थिरै,
परमौदारिक प्रत्याज निवसै वुसुमि धरै।। सो तीर्थराज।।14।।
वरकूट ज्ञानधर माल चार अघाति हरे,
जिन कुंथु कुंथु रखपाल सहजानंद भरे।। सो तीर्थराज।।15।।
ताटक नामा शुभ कूट आ अरिनाथ सही,
कर विधि बंधन सब झूठ शिव संपत्ति गही।। सो तीर्थराज।।17।।
श्री मध्य जीत विधि मध्य अकल अचल थाये,
थिर होय कूट संबद्ध जग शिर सरसाये।। सो तीर्थराज।। 18।।
शुचि निर्जर कूट विशाल सुव्रत जिनराई,
शुभ सुखद सुभग शिवबाल अविनश्वर पाई।। सो तीर्थराज।।19।।
श्री कूट मित्रधर आय नमि जिन विधि हरकैं,
हुव सिद्ध शुकल तुरि ध्याय योग प्रहन करकैं।। सो तीर्थराज।।20।।
श्री कूट भद्र कलधौत पार्श्व जिनेश भये,
विमलात्म कलिल निरधौत नित्य स्वरूप भये।। सो तीर्थराज।।21।।
अरु मध्य शंख मुनि ईश हन जँह भव फाँसी,
शिर त्रिजग विमल अवनीश पाई अविनाशी।। सो तीर्थराज।।22।।
तिन सब सिद्धन के पाय मन वच तन ध्याऊँ,
जिम भव परिभ्रमण विहाय निज संपति पाऊँ। सो तीर्थराज।।23।।
वंदौं भवि हर्ष उपाय लखप्रद सुखद रमा,
तृति बार तीर्थ छिति आय वरणी दौल नमा।। सो तीर्थराज।।24।।

(दोहा)

जे नर वंदै भाव कर, शैलराज सुखदाय।

नर्क पशू गति बंधहर, सो सुर शिवपद पाय।।24।।

।। इत्याशीर्वादः।।

6

पावापुर क्षेत्र संबंधी श्री वीरनाथ स्वामी पूजन

(दोहा)

तिहिं पावापुर छिति अघति, हत सन्मति जगदीश।
भये सिद्ध शुभ थान सौं, जजौं नाय निज शीश।।

ऊँ ह्रीं श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्र! अत्रावतरावतर संवौषडित्याह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

।।अथाष्टक।।

(गीता)

शुचि सलिल शीतौ कलिल रीतौ श्रमन चीतौलै जिसौ।
भर कनक झारी त्रिगद हारी दै त्रि धारी जित तृषौ।।
वर पदन वन भर पदन सरवर बहिर पावा ग्राम ही।
शिवधाम सन्मति स्वामि पायौ जजौं सो सुख दाम ही।।

ऊँ ह्रीं श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव भ्रमत भ्रमत अशर्म तप की तपन कर तपताइयो।
तसु वलय क्रंदन मलय चंदन उदक सँग घिस ल्याइयो।। वर पदन वन।।

ऊँ ह्रीं श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

तंदुल नवीने खंड हीने लै महीने ऊजरे।
मणि कुंद इंदु तुषार द्युति जित कण रकाबी में भरे।। वर पदन वन।।

ऊँ ह्रीं श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

मकरंद लोभन सुमन शोभन सुरभि चोभन लेय जी।
मद समर हर वर अमर तरु के प्राण दृग हर खेय जी।। वर पदन वन।।

ऊँ ह्रीं श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नैवेद्य पावन क्षुध मिटावन सेव्य भावन युत किया।
रस मिष्ट पूरत इष्ट सूरत लेय कर प्रमुदित हिया।। वर पदन वन।।

ऊँ ह्रीं श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तम अज्ञ नाशक स्व पर भासक ज्ञेय परकाशक सही।

हिम पात्र में धर मौल्य बिन वर द्योत धर माणि दीप ही।। वर पदन वन।।

ऊँ ह्रीं श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

आमोदकारी वस्तु सारी विधि दुवारी जारनी।

तसु तूपकर कर धूप लै दश दिश सुरभि विस्तारनी।। वर पदन वन।।

ऊँ ह्रीं श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल भक्व पक्व सुचक्व सोहन सुक्व जन मन मोहने।

वर रस पुरत लख तुरत मधु रत लेय कर अति सोहने।। वर पदन वन।।

ऊँ ह्रीं श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंध आदि मिलाय वसु विध थार स्वर्ण भरायकैं।

मन प्रमुद भाव उपाय कर लै आय अर्घ बनायकैं।। वर पदन वन।।

ऊँ ह्रीं श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

।।अथ जयमाल।।

(दोहा)

चरम तीर्थ करतार श्री, वर्द्धमान जगपाल।

कल मल दल विध विकल हुव, गाऊँ तिन जयमाल।।

(पद्धरि)

जय जय सु वीर जिन मुक्ति थान, पावापुर वन सर सोभवान।

जे सित अषाढ़ छठ स्वर्गधाम, तज पुष्पोत्तर सु विमान ठाम।।

कुंडलपुर सिद्धारथ नृपेश, आये त्रिशला जननी उरेश।

सित चैत्र त्रयोदश युत त्रिज्ञान, जन्मे तम अज्ञनिवार भान।।

पूर्वान्ह धवल चतु दिश दिनेश, किय नहुन कनक गिरि सिर सुरेश।

वय वर्ष तीस पद कुमर काल, सुख दिव्य भोग भुगते विशाल।।

मारगशिर अलि दशमी पवित्र, चढ़ चंद्रप्रभ शिविका विचित्र।

चल पुर से सिद्धन शीश नाय, धारौ संयम वर शर्म दाय।।

गत वर्ष दुदश तपकर विधान, दिन सित वैशाख दशै महान।

ऋजुकूला सरिता तट स्व सोध, उपजायौ जिनवर चरम बोध।।

तब ही हरि आज्ञा सिर चढ़ाय, रचियौ समवाश्रित धनद राय।

चतु संघ प्रभृत गौतम गणेश, युत तीस वरष विहरे जिनेश।।

भवि जीवन देशन विविध देत, आये वर पावानगर खेत।
कार्तिक अलि अंतिम दिवस ईश, व्युत्सर्गासन विधि अघति पीस।।
ह्वै अकल अमल इक समय माहिं, पंचम गति निवसै श्री जिनाह।
तब सुरपति जिन रवि अस्त जान, आये जु तुरत तज स्व स्व विमान।।
कर वपु अरचा थुति विविध भाँत, लै विविध द्रव्य परिमल विख्यात।
तब ही अगनींद्र नवाय शीश, संस्कार देह श्री त्रिजगदीश।।
कर भस्म वंदना स्व स्व महीय, निवसै प्रभु गुण चितवत स्वकीय।।
पुन नर मुनि गन पति आय आय, वंदी सो रज सिर ल्याय ल्याय।।
तब ही से सो दिन पूज्य जान, पूजत जिनगृह जन हर्षमान।।
मैं पुन पुन तिस भुवि शीश धार, वंदौं तिन गुणधर हृद मँझार।।
जिन ही का अब भी तीर्थ एह, वर्तत दायक अति शर्म गेह।।
अरु दुषम समय अवसान माहिं, वर्तेगौ भव थिति हर सदा हि।।

(कुसुमलता)

श्री सन्मति जिन अंघ्रि पदन, युग जजै भव्य जो मन वच काय।
ताके जन्म जन्म संतत अघ, जावहिं इक छिन माहिं पलाय।।
धन धान्यादि शर्म इंद्री लह, सो शिव शर्म अतेंद्री पाय।।
अजर अमर अविनाशी शिव थल, वर्णी दौल रहै शिव थाय।।

।। इत्याशीर्वादः।।

7

चंपापुर क्षेत्र संबंधी वासुपूज्य स्वामी पूजन

(दोहा)

उतसव किय पन वार जहँ, सुर गण युत हरि आय।

जजौं सुथल वसुपूज्य सुत, चंपापुर हर्षाय।।

ऊँ ह्रीं श्रीचम्पापुरसिद्धक्षेत्र! अत्रावतरावतर संवौषडित्याह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

।।अथाष्टक।।

(नंदीश्वर पूजन की लय)

सम अमिय विगत त्रस वार लै हिम कुंभ भरा,

लख दुखद त्रिगद हरतार दै त्रय धार धरा।

श्री वासुपूज्य जिनराय निर्वृत थान प्रिया,

चंपापुर थल सुखदाय पूजौं हर्ष हिया।।

ऊँ ह्रीं श्रीचम्पापुरसिद्धक्षेत्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चांपेय नीर मध गार पीत पवित्र खरी,

शीतल चंदन सँग सार ले भव ताप हरी।। श्री वासु।।

ऊँ ह्रीं श्रीचम्पापुरसिद्धक्षेत्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

मणि द्युति सम खंड विहीन तंदुल लै नीके,

सौरभ युत नव वर बीन शाल मही नीके।। श्री वासु।।

ऊँ ह्रीं श्रीचम्पापुरसिद्धक्षेत्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

अलि लुभन शुभन दृग घ्राण सुमन सुरन द्रुम के,

लैवा हिय अर्जुन बाण सुमन दमन झुमके।। श्री वासु।।

ऊँ ह्रीं श्रीचम्पापुरसिद्धक्षेत्राय कामबाणविध्वंशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

रस पुरत तुरत पक्वान्न पक्व यथोक्त घृती,

क्षुध गद मद प्रद मन जान लै विधि युक्ति कृती।। श्री वासु।।

ऊँ ह्रीं श्रीचम्पापुरसिद्धक्षेत्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तम अज्ञ प्रनाशक सूर शिव मग परकाशी,

लै रत्न दीप द्युति पूर अनुपम सुख राशी।। श्री वासु।।
ऊँ ह्रीं श्रीचम्पापुरसिद्धक्षेत्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
वर परमल द्रव्य अनूप शोध पवित्र करी,
तसु चूरण कर कर धूप लै विधि कंज हरी।। श्री वासु।।
ऊँ ह्रीं श्रीचम्पापुरसिद्धक्षेत्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
फल पक्व मधुर रसवान प्रासुक बहु विध के,
लख सुखद रसन दृग घ्राण लै प्रद पद सिध के।। श्री वासु।।
ऊँ ह्रीं श्रीचम्पापुरसिद्धक्षेत्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।
जल फल वसु द्रव्य मिलाय लै भर हिमथारी,
वसु अंग धरा पर ल्याय प्रमुद स्व चित धारी।। श्री वासु।।
ऊँ ह्रीं श्रीचम्पापुरसिद्धक्षेत्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

।। अथ जयमाल।।

(दोहा)

भये द्वादशम तीर्थपति, चंपापुर शुभ थान।
तिन गुण की जयमाल कछु, कहौं श्रवण सुख दान।।

(पद्धरि)

जय जय श्री चंपापुर सुधाम, जहँ राजत नृप वसुपूज नाम।
जन पौन पल्य से धर्म हीन, भव भ्रमण दुःखमय लख प्रवीन।।1।।
उर करुणा धर सो तम विडार, उपजै किरणावलि धर अपार।
श्री वासुपूज्य जिन तनैं बाल, द्वादशम तीर्थ करता विशाल।।2।।
भव भोग देह से विरत होय, वय बाल माहिं ही नाथ सोय।
सिद्धन नम महँव्रत भार लीन, तप द्वादश विध उद्योत कीन।।3।।
तहँ मोह सप्त त्रय आयु येह, दश प्रकृति पूर्व ही क्षय करेह।
श्रेणी जु क्षपक आरूढ होय, गुण नवम भाग नव माहिं सोय।।4।।
सोलह वसु इक इक षट इकेय, इक इक इक इम हन क्रम सहेय।
पुन दशम थान इक लोभ टार, द्वादशम थान सोलह विडार।।5।।
ह्वै अमित चतुष्टय युक्त स्वाम, पायौ सब सुखद संयोगि ठाम।
तहँ काल त्रिगोचर सर्व ज्ञेय, युग पतहिं समय इक महिं लखेय।।6।।

कछु काल दुविध वृष अमिय वृष्टि, कर पोखे भव भवि धान्य सृष्टि।
इक मास आयु अवशेष जान, जिन योगन की सु प्रवृत्ति हान।।7।।
ताही थल तृति शित ध्यान ध्याय, चतु दशम थान निवसै जिनाय।
तहँ दु चरम समय मकार ईश, प्रकृती जु बहत्तर तिनहिं पीस।।8।।
तेरह को चरम समय मँझार, करकैं श्री जगतेश्वर प्रहार।
अष्टमि अवनी इक समय मद्ध, निवसै पाकर निज अचल रिद्ध।।9।।
युत गुण वसु प्रमुख अमित गुणेश, ह्वै रहें सदा ही इमहि वेश।।
तब ही से सो थानक पवित्र, त्रैलोक्य पूज्य गायौ विचित्र।।10।।
मैं तसु रज निज मस्तक लगाय, वंदौं पुन पुन भुवि शीश ल्याय।
ताही पद वांछा उर मँझार, धर अन्य चाह बुद्धी विडार।।11।।

(दोहा)

श्री चंपापुर जो पुरुष, पूजै मन वच काय।
वर्णि दौल सो पावही, सुख संपति अधिकाय।।

।। इत्याशीर्वादः।।

8

रेशिंदि गिरि सिद्धक्षेत्र पूजन

(दोहा)

पावन परम सुहावनौ, गिरि रेशिंदि अनूप।
जजहुँ मोद उरधार अति, कर त्रिकरण शुचि रूप।।

भावार्थ- मैं मन, वचन, काय की पवित्रता पूर्वक अत्यधिक प्रसन्न मन से परम पवित्र अनुपम शोभायमान रेशिंदि पर्वत की वंदना करता हूँ।

ऊँह्रीं श्रीरेशिंदिगिरिसिद्धक्षेत्र! अत्रावतरावतर संवौषडित्याह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

।।अथाष्टक।।

(ढार नंदीश्वर पूजन की)

अति निर्मल क्षीरधि वारि भर हाटक झारी,
जिन अग्र देय त्रय धार करण त्रिरुग छारी।
पन वरदत्तादि मुनींद्र शिव थल सुख दाई,
पूजौं श्री गिरि रेशिंदि प्रमुदित चित थाई।।

भावार्थ- क्षीर सागर के निर्मल जल को स्वर्ण कलशों में भरकर मैं जिनदेव के समक्ष इसलिए समर्पित करता हूँ ताकि मेरे जन्म, जरा, मृत्यु संबंधी दुःखों का अंत हो सके। मैं वरदत्तादि पाँच मुनीन्द्रों को मोक्ष-सुख प्रदान करने वाले उस रेशिंदि पर्वत की प्रसन्न मन से पूजन करता हूँ।

ऊँ ह्रीं श्रीरेशिंदिगिरिसिद्धक्षेत्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिर चंदन सार केसर संग घसी,
शीतल वासित सुखकार जन्माताप कसी।। पन वरदत्तादि।।

भावार्थ- जन्म लेते समय होने वाले कष्टों से छुटकारा पाने के लिए मलय पर्वत से चन्दन लेकर एवं उसे केशर के संग मिला देने से अत्यन्त शीतल एवं सुगंधित बनाकर आपके चरणों में समर्पित करता हूँ। मैं वरदत्तादि पाँच मुनीन्द्रों को मोक्ष-सुख प्रदान करने वाले उस रेशिंदि पर्वत की प्रसन्न मन से पूजन करता हूँ।

ऊँ ह्रीं श्रीरेशिंदिगिरिसिद्धक्षेत्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

शुचि विमल नवल अति श्वेत द्युति जिम सोम तनी,
सोलै पद अक्षय हेत अक्षत युक्त अनी।। पन वरदत्तादि।।

भावार्थ- चन्द्रमा की चांदनी के समान स्वच्छ, निर्मल एवं पवित्र अक्षत मैं आपके समान अक्षय पद प्राप्त करने के लिए समर्पित करता हूँ। मैं वरदत्तादि पाँच मुनीन्द्रों को मोक्ष-सुख प्रदान करने वाले उस रेशिंदि पर्वत की प्रसन्न मन से पूजन करता हूँ।

ऊँ ह्रीं श्रीरेशिंदिगिरिसिद्धक्षेत्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ सुमन त्रिदश तरु केय स्वच्छ करंड भरी,
मद ब्रह्म-तनुज हरनेय भेंट जिनाग्र धरी।। पन वरदत्तादि।।

भावार्थ- मैं कामदेव के मद को दूर करने के लिए कल्पवृक्ष के पवित्र पुष्पों से पूरित डलिया जिनेन्द्र देव के समक्ष समर्पित करता हूँ। मैं वरदत्तादि पाँच मुनीन्द्रों को मोक्ष-सुख प्रदान करने वाले उस रेशिंदि पर्वत की प्रसन्न मन से पूजन करता हूँ।

ऊँ ह्रीं श्रीरेशिंदिगिरिसिद्धक्षेत्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुध फणहिं विहंगमनाथ नेवज सद्यानी,
करि विविध मधुर रस स्वाद विधि युत अमलानी।। पन वरदत्तादि।।

भावार्थ- मैं नागिन-जैसी क्षुधा को भगाने के लिए गरुड़-जैसी दोष रहित, मधुर रस सहित, नाना प्रकार की ताजी नैवेद्य विधिपूर्वक आपको समर्पित करता हूँ। मैं वरदत्तादि पाँच मुनीन्द्रों को मोक्ष-सुख प्रदान करने वाले उस रेशिंदि पर्वत की प्रसन्न मन से पूजन करता हूँ।

ऊँ ह्रीं श्रीरेशिंदिगिरिसिद्धक्षेत्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मिथ्यातम भानन भान स्वपर उजास कृती,
ले मणि मय दीप शुभानि विमल प्रकाश धृती।। पन वरदत्तादि ।।

भावार्थ- मिथ्यात्व रूपी अंधकार को दूर करने हेतु स्वपर-भेदविज्ञान रूपी सूर्य को प्रकट करने के लिए मैं निर्मल प्रकाश वाले पवित्र मणिमय दीपक समर्पित करता हूँ। मैं वरदत्तादि पाँच मुनीन्द्रों को मोक्ष-सुख प्रदान करने वाले उस रेशिंदि पर्वत की प्रसन्न मन से पूजन करता हूँ।

ऊँ ह्रीं श्रीरेशिंदिगिरिसिद्धक्षेत्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।

कर्मेन्धन जारण काज पावन वह्नि महीं,
वर दस विध धूपहिं साज खेय उछाय गही।। पन वरदत्तादि।।

भावार्थ- कर्म रूपी ईंधन को जलाने के लिए दस प्रकार की उत्कृष्ट धूप पवित्र अग्नि में उत्साह पूर्वक समर्पित करता हूँ। मैं वरदत्तादि पाँच मुनीन्द्रों को मोक्ष-सुख प्रदान करने वाले उस रेशिंदि पर्वत की प्रसन्न मन से पूजन करता हूँ।

ऊँ ह्रीं श्रीरेशिंदिगिरिसिद्धक्षेत्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

दृग घ्राण रसन मन प्रीय प्रासुक रस भीने,

सुख दायक मोक्ष पदीय ले फल अमलीने।। पन वरदत्तादि।।

भावार्थ- मैं सुखदायक मोक्षपद को प्राप्त करने के लिए आँख, नाक, जीभ व मन को प्रिय लगने वाले प्रासुक, रसीले और निर्मल फल समर्पित कर रहा हूँ। मैं वरदत्तादि पाँच मुनीन्द्रों को मोक्ष-सुख प्रदान करने वाले उस रेशिंदि पर्वत की प्रसन्न मन से पूजन करता हूँ।

ऊँ ह्रीं श्रीरेशिंदिगिरिसिद्धक्षेत्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुचि अमृत आदि समग्र सजि वसु द्रव्य प्रिया,

धारौं त्रिजगति पति अग्र धर वर भक्त हिया।। पन वरदत्तादि।।

भावार्थ- मैं जल-फलादि पवित्र अष्टद्रव्य सजाकर तीन लोक के नाथ के समक्ष भक्तिपूर्ण हृदय से समर्पित करता हूँ। मैं वरदत्तादि पाँच मुनीन्द्रों को मोक्ष-सुख प्रदान करने वाले उस रेशिंदि पर्वत की प्रसन्न मन से पूजन करता हूँ।

ऊँ ह्रीं श्रीरेशिंदिगिरिसिद्धक्षेत्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्विपामीति स्वाहा।

।। अथ जयमाल।।

(दोहा)

जग बाधक विधि बाधकर, हे अबाध शिव धाम।

निवसे तिन गुणधर स्वहृद, गाऊँ वर जय दाम।।1।।

भावार्थ- संसार में बाधाएँ उत्पन्न करने वाले कर्मों को दूर करके जिन्होंने निर्बाध मोक्ष पद प्राप्त कर लिया है उनके जैसे गुणों को अपने हृदय में धारण करके जयमाल से स्तवन कर रहा हूँ।

(पद्धरि)

जय जय जिन पार्श्व जगत्रि स्वाम, भवदधि तारण तारी ललाम।

हतघाति चतुक ह्वै युक्त संत, दृग ज्ञान शर्म वीरज अनंत।।2।।

भावार्थ- हे संसार सागर से पार लगाने वाले, तीन लोक के नाथ पार्श्वनाथ स्वामी, आपने चार घातिया कर्मों का क्षय करके, अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख और अनंत वीर्य प्रकट कर लिया है।

सो समवशरण कमला समेत, विहरत विहरत पुर नाम खेत।

सुर नर मुनि गण सेवत कृपाल, आये भवि हितु तिहिं अचल भाल।।3।।

भावार्थ- समशरण रूपी लक्ष्मी से सुशोभित, देवों मनुष्यों व मुनियों द्वारा पूजित, नगर-नगर विहार करने वाले पार्श्वनाथ भगवान भव्य जीवों के कल्याण के लिए रेशिंदि गिरि के शिखर पर पधारे थे।

अरु वरदत्तादि मुनींद्र पंच, चतु विध हन केवलज्ञान संच।

लख सर्व चराचर त्रिजग केय, त्रैकलिक युगपत पद अमेय।।4।।

भावार्थ- वरदत्तादि पांच मुनीन्द्र चार घातिया कर्मों का नाश करके, केवलज्ञान प्रकट करके तीनों लोकों के त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों की अनन्त पर्यायों को युगपत जानने में समर्थ हो गये।

निज आनन द्वै विध वृष स्वरूप, उपदेश भरण भवि कर्म कूप।
दृग ज्ञान चरण सम्यक् प्रकार, शिव पथ साधक कह त्रिजग तार।।5।।

भावार्थ- जो अपने मुख से निश्चय और व्यवहार रूप दो प्रकार के धर्म का उपदेश देकर भव्य जीवों को कर्मों के कुएँ से निकालते हैं, जिनके श्रद्धा, ज्ञान व चारित्र सम्यक् हो चुके हैं, जो मुक्ति मार्ग के अनुगामी हैं तथा दु:खी प्राणियों को तारते हैं।

अरु सप्त तत्त्व षट् द्रव्य केव, पंचास्तिकाय नव पद नमेव।
दृग कारण सो दर्शाय ईश, तिहिं भूधर सिर पुनि अघति पीस।।6।।

भावार्थ- जो सम्यग्दर्शन के कारणभूत सात तत्व, छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, नौ पदार्थ का स्वरूप दर्शाते हैं उन्हें हम नतमस्तक होकर कर्मों के नाश करने हेतु प्रणाम करते हैं।

पंचम गति निवसै तव सुरेश, आके लै सुर गण सँग अशेष।
रेशिंदि शिखर रज शीश ल्याय , किय पंचम कल्याणक उछाय।।7।।

भावार्थ- जब पार्श्वनाथ भगवान पंचम गति अर्थात् मोक्ष पधारे तब देवों ने रेशिंदि गिरि के शिखर की धूलि को मैं अपने मस्तक पर धारण किया और उत्साह पूर्वक मोक्ष कल्याणक मनाया।

मैं तिन पद पावन चाह ठान, वंदौं पुन पन सो सुखद थान।
मन वच तन तिन गुण स्व उर धार, वर्णी दौलत अनचाह टार।।8।।

भावार्थ- मैं उनके समान पद प्राप्त करने की पवित्र भावना से बारम्बार उस स्थान की वंदना करता हूँ। वर्णी दौलतराम की यह भावना है कि अनिष्ट का निवारण करके प्रभु के समान गुणों को मन-वचन-काय से अपने हृदय में धारण करूँ।

(दोहा)

आनँद कंद मुनिंद गुण, धर उर को शम्कार।
पूजै ध्यावै सो सुधी, ह्वै लघु महिं भव पार।।9।।

भावार्थ- आनंद के निधान मुनिराजों के सुखकारी गुणों को जो अपने हृदय में धारण करते हैं, पूजते हैं और ध्याते हैं वे बुद्धिमान व्यक्ति अल्प अवधि में ही संसार-सागर से पार हो जाते हैं।

।। इत्याशीर्वाद:।।

9

निर्वाण क्षेत्र पूजन

(दोहा)

जहँ जहँ से हुय सिद्ध जिन, वृषभादिक चतुबीस।।

अरु केवलि सामान्य सो, जजहुँ भूमि नम शीष।।

ॐ श्रीनिर्वाणक्षेत्रसमूह ! अत्रावतरावतर संवौषडित्याह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

।। अथाष्टक।।

(गीता)

त्रसहीन कंमलछीन लखरु गतीन खीन करावनौं।।

द्रह गंग सम भर भ्रंग रत्न उमंग कर मन भावनौं।।

कैलाश भूभृत प्रभृत निरवृत थान जे सुखदाय हैं।।

अरचौं सतत चित गति प्रहत ते जन्म रोग नसाय हैं।।

ॐ ह्रीं श्रीनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भवताप क्रंदन मलय चंदन कदलि नंदन तामहीं।

घिस संग पीत पवीत केशर सियल सौरभ धामहीं।। कैलाश।।

ॐ ह्रीं श्रीनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

वर खंड हीन नवीन बीन महीन छीन मलीनता।

सम इंदु कुंद अमंद तंदुल ल्याय दाय अखीनता।। कैलाश।।

ॐ ह्रीं श्रीनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

मद मीन केतु प्रहर्ण हेतु अचेत वृक्ष दिवालयी।

दृग घ्राण मन रंजन मनोहर सुमन दाम समालयी।। कैलाश।।

ॐ ह्रीं श्रीनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुध गद नशावन परम पावन शुद्ध भावन से कियौ।

नेवज रसार्जित कलुष वर्जित लेय सो हर्षित हियौ।। कैलाश।।

ॐ ह्रीं श्रीनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हर्तार भ्रम अंधियार स्व पर प्रकार सार लखावनी।

दिननाथ सम मणिमय अनूपम जोय दीप सुहावनी। कैलाश।।

ॐ ह्रीं श्रीनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दुष्टाष्ट कर्म जरान परम लवान द्रव्य मँगायकैं।।

दव भाव माहिं खिपाय कर अतिशुद्ध धूप बनायकैं।। कैलाश।

ॐ ह्रीं श्रीनिर्वाणक्षेत्रेभ्य: अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल मुक्तिप्रद युत स्वाद सद आनंद मन दृग दाइयो।

रस रक्त चित थिति त्यक्त लख ह्वै भक्ति रत फल ल्याईयो।। कैलाश।।

ॐ ह्रीं श्रीनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

विधवार आदि फलांत चारु समार वसु परकार ही।

चित मुदित अर्घ उदार कर भर थार स्वर्णिम कार ही।। कैलाश।।

ॐ ह्रीं श्रीनिर्वाणक्षेत्रेभ्य: अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

।। अथ जयमाल।।

(दोहा)

जम्बु द्वीप भारत वरष, आरज माहिं चितार ।

पृथक पृथक शिव भूमि कह, नमौं त्रियोग सम्हार।।

(पद्धरि)

जय जय श्री अष्टापद शिरेश, त्रिजगत नुत आदीश्वर जिनेश।

श्री वासुपूज्य भवि जन उधार, वंदौं नित चंपापुर मँझार।।1।।

जय उर्जयंत गिरिराज शीश, ध्याऊँ नेमीश्वर त्रिजगदीश।

जय जय पावापुर सर निहार, वंदौं श्री सन्मति जिन उदार।।2।।

धुत क्लेश सुरासुर प्रणत शीश, श्री तीर्थनाथ अजितादि बीस।

वर सम्मेदाचल शीर्ष ध्याय, वंदौं पुन पुन लख शर्म दाय।।3।।

इन थानन पुनि मुनिनाथ और, वंदौं दर्शक शिव मार्ग दौर।

वर नगर तारवर अचल जोय, पावागढ़ गिरि सेतुंज सोय।।4।।

गजपंथ शिखर वंदौं सदीय, तुंगीगिरि कुंथलगिरि महीय।

गिरिचूल शिखर वर सिद्धकूट, वंदौं संसृति रुग करण झूठ।।5।।

तल सुवरणभद्राचल सुभान, द्रौणागिरि अरु रेशिंदि थान।

पुन रेवा सरिता तट मनोग, पावगिरि चलना सरित जोग।।6।।

वैभार शिखर पाटल पुरीय, सुरनाम नवादा भुमि गणीय।।
जंबुन वन मथुरा नगर वार, पोदनपुर अरु शिल कोटसार।।7।।
गिरि मेंड अवर शिवगमन थान, वंदौं पुन पुन प्रद सुख अमान।
अरु द्वीप अढाई के मँझार, है सिद्धभूमि जहँ जहँ अवार।।8।।
युत कल्याणक पंचक भुवीय, वंदौं सब कर त्रिकरण शुचीय।
सुर नर मुनि गण सेवित विशाल, लख वरणी दौल नमैं त्रिकाल।।9।।

(दोहा)

संसृति वास विनाश कर, सिद्धावास प्रदीय।
जान मान पूजहिं भविक, लह सो सुखद महीय।।

।। इत्याशीर्वादः।।

10

त्रैलोक्येश चतुर्विंशति जिन स्तोत्र

(शार्दूलविक्रीडित)

त्रैलोक्येश नमंत शीष जिनको सर्वाधिपी पेख के,
कोड़ाकोड़ि दशाष्ट अब्धि यमसे जीवा दुखी देख के।
धर्माधार विहीन नाथ तब ही कारुण्यता लाय के,
आये शीघ्र विहाय शर्म दिवके गर्भाब्जि में माय के।।1।।
श्रीमन् नाभि नृपेंद्र मंदिर उदै शैलेंद्र के शेखरी,
ऊग्यौ बाल सहस्त्र रश्मि धृतभा कोटार्क भाजै करी।
तीर्थाधीश मुनीश आदि जिन सो भव्यान शर्मप्रदा,
हूजै नोह विलोक भृत्य निज ही वीतेन्द्रिया सौख्यदा।।2।।
आनंदामृत पूर्ण पूर्ण नगरी गर्भाग्र ही जास के,
कीनी श्री धन देव हर्षित हिया बाधा सबै नाशके।
वृष्टी रत्नमयी भि जन्म दिन लौं सो तीर्थ दूजै कृती,
दीजै भो अजितेश स्वात्मज रमा मो देख पीड़ा अती।।3।।
जाके जन्म तहीय आय मघवा आरूढ़ नागेंद्र हो,
लैकैं हाटक कुंभ क्षीरधि जलै शैलेंद्र शीर्षेन्द्र हो।
कीनौं भक्ति उपाय न्हौंन रुचि से आनंदकारी सही,
सो श्री संभव स्वामि देहु हम को कर्मारि हीनी मही।।4।।
आके निष्क्रम काल माहिं जिनके ब्रह्मर्षि हर्षेय के,
वंदे श्री पद पदन शीश भुविला पुष्पांजली देय के।
सो स्वामी अभिनंदनो तुरि जिनो आधीन मो जानके,
द्यो स्वाधीन पदीय धार करुणा संसृत्य भय भान के।।5।।
श्री कोकांकपती अती शुभतपी दौर्मत्य वल्लीकरी,
क्रोधादीय कषाय नागखगपी कर्मारि नागै हरी।
सो श्री तीर्थ अधीश ईश सुमती मो कर्म इंधै दवी,
ह्वै कैं देहु दयाल हाल सुमती हर्म्येश शर्मेशवी।।6।।

जाके केवलज्ञान दर्पण मही त्रैलोक्य ज्ञेयावली,
त्रैकालीय समस्त आय झलकी ज्यौं हस्त रेखांगुली।
सो पद्मेश जिनेश वेग हरके मो अज्ञ पाटल्ल ही,
दीजो भूमि हजूर पूर्ण सुख की निर्वाण आटल्ल ही।।7।।
सम्यग्दर्शन बोध वृत्त इकता स्वात्मोपलब्धी कृती,
याके श्रेण्यारूढ़ होय क्षपकी ध्यानाग्नि साधें अती।
शत्रूजार दुचारली शिवरमा सो पार्श्व भौ कंध के,
धर्ता श्रीय सुपार्श्व पास मुझ लो कर्ता स्व श्रीसंघ के।।9।।
श्री सोमानन सोम रश्मि जयनी भाधीश सोम प्रभू,
सोहै जासु समीप सेव्य जग की बाह्यांतरंगी विभू।
सेवैं जी पद पद्म अंक मिस से ह्वै सोम सौम्याकृती,
दीजै सो तप जन्म सम्यक हमें श्रीस्वात्म सोमद्युती।।10।।
नृक्षंते हि अशोक वृक्ष जिनके शोकावली नाशही,
जीं भा चक्र मँझार सप्त स्व भवा भव्यां सदा भास ही।
सो रत्नेंदु समाशिती द्युतिपती श्री पुष्पदंतेश्वरो,
दीजै मोह स्व मार्ग आशु लख के भीष्माटवी भौ परौ।।11।।
ग्रीष्मार्केश तपेश जैत भव की तप्ताति चंडीभनी,
जामें सत्व चिरंत तप्तत हिया भोगंत बाधा घनी।
ध्याते ही क्षिन माहिं सोय सब ही ह्वै शीतली जास के,
द्यो सो शीतलनाथ शीतल मही मो घर्मता नाश के।।12।।
क्षुत्तृष्णा तप शीत आदि अमिती दारुण्य रोगावली,
भुक्तीं काल अनादि सेय सब ही कल्याण माला दली।
जाके नाम प्रभाव सेय लघु में ह्वै नाश भो स्वामि सो,
श्री श्रेयांस जिनेश देहु हमको श्री श्रेयदा धाम सो।।13।।
लै ब्रह्मायुध तीक्ष्ण पान स्व विषैं कौमार ही वै महीं,
जीत्यो मक्र प्रचंड सूर स्व बलै जो पंचबानें ग्रही।
लीनौं स्वात्मज पर्म शर्म जिन ते श्री वासपूज्याधिपी,
कीजो मो रतिनाथ जेत लख के रक्तालि पद्मांघ्रिपी।।14।।

बाह्याभ्यंतर द्वैविधीय मल ये सर्वान जीवान कौ,
नाना भाँति दुखांत पात जग में दै दान अज्ञान कौ।
जेते सर्व विनाश निर्मल भये ते स्वामि मो दास को,
जग्भर्त्ता विमलेश वास विमली द्यो पूर के आस को।।15।।
जो पंचामुखि से अमेय अघयी जीवान आवास है,
सो संसार वनी अनंत अथवा दीर्घा स्थिती जास है।
सो मिथ्यात्व अनंत अंत जिननें कीनौ लघू काल में,
ल्यो सो स्वामि अनंत संग स्व मुहें हों आपका बाल में।।16।।
सद्धर्मामृत वृष्टि पुष्टि स्वमुखी मेघौ घसो ठान जो,
नाशी धर्म विरुद्ध व्याधि क्षिन में पीडंत सत्वान जो।
धर्माधीश ऋषीश धर्मकर सो निर्नाश भर्माशया,
कीजै धर्म जिनेश धर्मधर मो जो पर्म शर्माश्रया।।17।।
जाके सेवत मात्र हीय जग को पीड़ा कृती भीम जे,
मारी चौर महादुभिक्ष प्रभृती दुर्ध्यान की सीम जे।
ह्वै शांती मुनि संत कंत जिन ते मो जंत भैवंत ही,
दीजै शांति महंत शांत पदवी श्रीमंत जैवंत ही।।18।।
जो भौ नीर गहीर पीडित जिया कुंथ्वादि जेते यही,
सो श्री आन नवानि जान बल से तारंत शीघ्रे यही।
ते संघेश जिनेश खेश कर मो दुःखावली भर्मणी,
द्यो श्री कुंथु स्व पाद पद्म रमणी सदनावली शर्मणी।।19।।
त्यागी राज्य रमा सचक्र जिनने भर्ताधिपो सर्व ही,
लै कैं एकीभाव चक्र स्व करै नाश्यौ अरी गर्व ही।
ह्वै भर्त्ता वृष चक्र केय सुखदा सन्मार्ग दर्शाइयो,
सो मेरे अरि नाशि स्वामि अर श्री स्वानंद वर्षाइयो।।20।।
जो एकादश थान लौं भव जियान् पीडै करै मत्तिया,
अष्टाविंशति सूर संग जिहिं के ताकैं अती घातिया।
जीत्यौ मोह सबल्ल मल्लि जिन सो ह्वै स्वात्म बल्लै धृती,
सो श्री मल्लि अडिल्ल सल्ल दल मो द्यो श्री अकल्लै कृती।।21।।

कालानादि मई व्यतीत सुख की दुर्लंघ्य भेषै करैं,
जो भ्रम्मंत अनंत जंत अमिते दारुण्य दुक्खै भरैं।
सो अव्रत्य पुरी उलंघ जिन ने सुव्रत्य थानों लियौ,
तेसू वृत्य प्रभू सुवृत्त पद मो प्रज्ञाधिपी कीजियौ।।22।।
अष्टाधिक्य सहस्त्र नाम जिनके सार्थक्य संज्ञा वही,
जग भर्त्ता जग चक्षु बुद्ध विष्णू धाता विधातादि ही।
लै लै स्वानन हर्ष युक्त अमराधीश स्तुती ठानते,
स्वामी सो नमि ईश ईश पद मो द्यो टार दुर्ध्यान ते।।23।।
राज्य श्री जिन पर्म शर्म हर्म्याढाही भलैं जान के,
अंगीकार भि कीन चित्त विरम्या मोही दलै भान के।
ह्वै नेमी सम धर्म चक्र रथ के श्योमार्ग शीघ्री कियौ,
ते श्री नेमि जिनेंद्र कंद हनभौ मो थान स्वांघ्री दियौ।।24।।
श्रीवानी जिन धारते हि स्व उरै दारु स्थिते द्वे अही,
ह्वै प्राणांत तुरंत संत पघती नागाधिपी श्रीगही।
आराती बल चंड खंडित भयौ जाके तपो वीर्य से,
सो श्री पार्श्व जिनेश देश निज मो द्यो लेश में धीर्य से।।25।।
अद्याब्धी जिन शासना भव जिया धारैं भली रीति से,
साधैं स्वर्ग पवर्ग मार्ग मन कौ टारैं छली प्रीति से।
सो श्री सन्मति स्वामि दोष सब ही मो टाल के ख्याल से,
लीजौ हाल उबाल बाल लख के विक्राल भौ जाल से।।26।।
त्रैलोक्येश थुती पवित्र श्रगया चौबीस तीर्थेश की,
धारै जो निज कंठ भव्य रुचि से भण्याश गर्त्तेश की।
हे भुक्तावर अर्थ काम जिय सो भौ भौ अनुक्रम्य से,
पावै सद्म स्ववर्णि दौलतर के भौ नीर अगम्य से।।27।।

11

पंच परमेष्ठी स्त्रोत्र

(वसन्ततिलका)

श्री वीतराग जिन घाति चतुष्क घाती,
पाई चतुष्टय अनंत रमा स्व जाती।
ता मध्य ज्ञान दृग सेय जगत्रि केरे,
जीवादि सर्व पद एकहिं काल हेरे।।1।।
वे खेद हीय सब वीर्य अनंत सेई,
भुक्ता स्वभाव निज शर्म अनंत येई।
पीयूष वृष्टि निज आनन धर्म रूपी,
आतंक नाश कर भौ भ्रमना स्वरूपी।।2।।
देवेंद्र नाग मनुजेंद्र त्रिनाशि रेशं,
श्वेतातपत्र त्रय शीर्ष धरे जिनेशं।
त्रैलोक्य ईश लखते जग तार स्वामी,
तारो भवाब्धि मुह होय तरी ललामी।।3।।
दुष्टाष्ट कर्म हन अष्टमि भूमि जोई,
राजंत सद्म गुण अष्टन तुष्ट होई।
नग्नेश जन्म अरु मृत्यु जरा तुरंतं,
ध्यानाग्नि जार भव पाए ह्वै महंतं।।4।।
तीर्थेश भीय जिहिं निक्रम काल माहीं,
नावंत शीश निज भक्ति हृदै उपाहीं।।
चैतन्य ब्रह्म मय ते शिव सद्म थानी,
दीजै स्वथान मम थान कुथान भानी।।5।।
शास्त्राब्धि पारग महंत गुणौघ धामी,
छत्तीस आदि अरु संघ चतुष्क स्वामी।
शिष्यान शिक्षवर मार्ग जिनेंद्र चारी,
दातार सूरि पद पद्महिं धोक म्हारी।।9।।

तीक्ष्णी नखेश अघ सिंह निवास थानी,
संसार भीम अटवी अति दुख खानी।।
भूले जियान शिव मार्गहिं जे लगावें,
पाठी मुनींद्र हम ते लख शीश नावें।।7।।
जे नित्य वृत्य तप संयम माहिं राते,
ध्यानग्नि सेय वसु कर्मन जे जराते।।
जे मोक्षमार्ग पट पाटन सूर ईशं,
ते साधु मोह थल देहु त्रिलोक शीशं।।8।।

(शार्दूलविक्रीडित)

श्री नाकाधिप नाग वा नभ पती भूपेंद्र पश्वेंन्द्र ये,
शत शक्रेश जजंत पाद जिनके ह्वै हर्ष संयुक्त ये।
अर्हत् सिद्धाचार्य पाठक मुनी पाँचों हि पर्मेश ते,
दीजै मो त्रय रत्न दौल वरणी हर्तार भौ क्लेश ते।।9।।

12

तरण-तारण जिन स्तोत्र

(गीतिका)

तुम तरण तारण तरणि अनुपम जनम नीर गहीर तैं,
युत अमित चतुश्री सतत राजित विगति चतु घति सीर तैं।
मैं भ्रमत चतु गति विपति भुगतत जड़ित दुचतु जँजीर सैं,
मित रहित यम गति कियन हुव कहुँ निवृत दुर्गति पीर सैं।।1।।
तुम दोष क्षुध तृष प्रमुख वसु दस अवश श्री जिनराज जी,
वर समवसरण मँझार राजित सहित संघ समाज जी।
सिर पीठ पंचानन स्व चतुरानन स्वरूप जिनेश्वरो,
तन भाव लय निरखत लजित ह्वै अमित सोम दिनेश्वरो।।2।।
मैं रह निगोद दुथान काल अमान तीत बिताइयो,
तहँ स्वास इक महिं जन्म मृतु अठ दस करत दुख पाइयो।
बल लब्धि लह थिति अब्धि कुदगानल अनिल तरु तन लयौ,
तहँ उदधि कल्प असंख तक चतु प्राण धारी ह्वै रयो।।3।।
जो जोग वृहन रतन पथिन जिम जतन त्रस तन पाइया,
तहँ इंद्र चित चतु अमन ह्वै ह्वै शमन पुन अघ जाइया।
वस तास पुन लिय वास नर का वास त्रास तहाँ घनी,
थित दधि नमित लह भुगत कहुँ पर्याय पाई नर तनी।।4।।
तहँ नीच कुल मातंग आदिक ह्वै अघज पुन पुन भयौ,
लह कुगति पुन पुन विपुल उद वश प्रथुल कुल गृह जो जयौ।
सो धर्म जिन वर परम सुखकर स्व चित कबहुँ न धारियौ,
पर सुकृत कर कछु अमर पद धर चाह दव तहँ जारियौ।।5।।
थिति क्षीन दाम मलीन कर लख होत च्युति अति झूरियौ,
तब हुव इकेंद्रिय बहुरि परिवर्तन इमहिं बहु पूरियौ।
अब पुन्य आगत आय या गत शर्म पागत थान में,
उपजौ करण पूर्णादि सब सामग्रि पाय महान में।।6।।

तुम पद कमल निर्मल धवल पद दाय लह आनँद घनों,
ध्वनि सोर सुनि सब ओर वर मम मोर सम हर्ष्यौं मनों।
सो ईश अब जग शीश पद कर पूर्णता त्रिरतन तनी,
मुह द्यौ अतौलत वर्णि दौलत रहित मौलत शिरमणी।।7।।

13

द्वादश अनुप्रेक्षा

(दोहा)

त्रिभुवनेंद्र नुत पद प्रणम, त्रिभुवन तिलक जिनंद।
कहुँ अनुप्रेक्षा जननि सम, भविजन जननानंद।।1।।

(गीतिका)

अध्रुव अनुप्रेक्षा

जो कोई वस्तु जई जगत महिं होय तसु व्यय क्षिन महीं,
पर्यय स्वरूप निहारतैं नहिं कोई ध्रुव भावी कहीं।।
है जन्म मृत्यु सहित्त यौवन वृद्धि वय युत जानिये।
लक्ष्मी विनाश सँयूत भंगुर इमहिं सर्व प्रछानिये।।1।।
परिजन सजन सुत मित्र भृत्य कलत्र लावनता महा।
गृह गौ धनादिक सर्व नव घन विंद सदृश है यहाँ।।
हय गय विषय इंद्रिय रथादिक सम अमर धनु दामिनी।
दृग परत वखतहिं नशत महत भि वसत अन अनुगामिनी।।2।।
वसनान असन स्नान सुरभ विधान विविध तरान सै।
पोषी थकी यह देह भी जल भृत्त घट सम मानसै।।
इम अथिर भावन सुथिर भावन पथ रमावन शिव तनी।
भव अब्धि तरणी बंध हरणी नित सुमरणी सुधमनी।।3।।

अशरण अनुप्रेक्षा

नर सुर असुर पति हर हरी ब्रह्मादि महत पुरुष जहाँ।
सब भक्ष यम सब भक्ष लिय तौ को शरण भव में तहाँ।।
मृग पति क्रमागत मृगहिं वन महिं जिम न कोइ रखावहीं।
यम ग्रसत जीवन रखन तिम को भी कभी समरथ नहीं।।4।।
जो मंत्र तंत्ररु क्षेत्रपालादिक मुवत कहुँ राषते।
तौ सर्व जन ये मरण बिन ह्वै पद अखय रस चाषते।।
दिवपति भि स्व थिति विततन तिहीं क्षिति करन थिति समरथ कदा।

इम लष शरण परवान नख रख शरण परव स्व वृष सदा।।5।।

संसार अनुप्रेक्षा

संसार वार अपार पंच प्रकार संतति राजहीं।
तहँ भ्रमत मरत अनादि यम से जिय अशर्म समाज हीं।।
ह्वै द्वैध इतर निगोद भू जल दव अनल तरु काइया।
विति चतु अमन पंचेंद्रि क्रम से ह्वै न सुख कहुँ पाइया।।6।।
दुख घोर नरकन ठौर ठौरन और को वरणत लहै।
नर गति सँयोग वियोग इष्टानिष्ट संज्ञक मय सहै।।
सुर मनुज व्यसन भरै इसी विधि काल अमित प्रपूरिया।
संसार भाव कषाय कबहुँ न परिभ्रमण भव चूरिया।।7।।

एकत्व अनुप्रेक्षा

जन्मै जिया इक हीय गर्भ मँझार इक ही तन ग्रहै।
इक बाल यौवन होय इक ही वृद्धि पन तन दुख सहै।।
ह्वै रोगि सोगी एक ही इक तपत मन कृत दुःखजा।
वपु त्याज इक दिवराज ह्वै इक अघज ह्वै लह कुभु सजा।।8।।
इक धर्म संच दु कर्म वंच अशर्म पंचक तज सही।
इक सजनि जज दजनी विधज वन दज लहै इक शिव मही।।
इम जान सर्व स्थान इक इक द्वैत भाव जघान कैं।
हो सुदृग धर युत शर्म वर एकत्व भाव प्रछान कैं।।9।।

अन्यत्व अनुप्रेक्षा

तू भिन्न एक सदैव निरभय पूर्ण ज्ञायक रस भरौ।
चैतन्य ब्रह्म स्वरूप निरुपम सकल परभावन परौ।।
जल क्षीर मेह सनेह तिल थल दधि मही जिम घृत अहै।
तिम देह महिं विध वस अहर्निश समिलि पर अमिलित रहै।।10।।
धन धाम वामा राम मा पितु सुत सुमित्रादिक सवै।
परतक्ष तौ सब अक्ष भिन्न स्व पक्ष भीति न महिं अवै।।
कर किम स्वराज समाज त्याजी अहौ अब भी चेत कैं।
अन्यत्व भाव उपाय स्व पर लसाय भ्रम मति रेत कैं।।11।।

अशुचि अनुप्रेक्षा

कृम कुल कलित मल रचित मल भृत मल स्त्रवत अति नित प्रती।
सब ही कुथानन घान अशुच गदान पूरत घृणवती।।
जे द्रव्य वस नाशन सुमन गंधादि पावन जग महीं।
तेयाश परसत मात्र ही रहँ पर्शने लायक नहीं।।12।।
जो मक्षिका पर सम उपरि त्वच नवेष्टित होती कदा।
तौ काग वग गृद्धादि मिलकर याह भष लेते तदा।।
सोगात लह तुम भ्रात ताम्र हिं रात सुपनहिं पाइयौ।
अशुचित्व भावन भाय पावन अब स्व रमणि रमाइयौ।।13।।

आस्त्रव अनुप्रेक्षा

चल जिय प्रदेशन जिन विशेषन योग मन वच तन तनै।
उद मोह युत अरु अयुत भी जो होंय आश्रव सो भनै।।
पुन ताहि पाक वशात जे परणाम जीव भवा तहैं।
मिथ्यात प्रभृत अमात आस्त्रव जात सो इक हात हैं।।14।।
सो शुभ अशुभ द्वे भाँत तहँ शुभ आत जिय सुख पावहीं।
सुर नर खगादिक वर पदीधर पुन अशुभ जब आवहीं।।
तब कुगति लह दुख अमित सह जिहिं पार नहिं गणधर लहै।
तिहिं रोध जो वर बोध लह पुन सो सुधी शिव पथ गहै।।15।।

संवर अनुप्रेक्षा

सम्यक्त्व अरु इकदेश व्रत मँह व्रत कषायन जय सही।
ये जान संवर नाम योगन के अभावहिं भी तहीं।।
वृष समिति गुप्त्यनुप्रेक्ष परिषह जयन वर चारित यहै।
कहँ हेतु संवर के सुधी जिन धरत विधि आगत रहै।।16।।

निर्जरा अनुप्रेक्षा

तप दुदश विध कर चाह विन वर राग रहित स्वभाव तैं।
ज्ञानी अमानी जियन के निर्जरैं विध रुक आवतैं।।
सविपाक अरु अविपाक सो सविपाक तहँ सब जिय करै।
अविपाक श्री मुनिनाथ कर शिवपुर महीं वर सुख भरै।।17।।

लोक अनुप्रेक्षा

षट् द्रव्य मय यह लोक काल अनादि ही से वरनयौ।
करता न हरता कोइ याकौ निराधार हिं थिर थयौ।।
राजू त्रिशत तेताल ता मनतो स्वरूप कभी कहीं।
चिद्रूप तू जड़ रुप जग तद् रूप में रचिये नहीं ।।18।।

बोधिदुर्लभ अनुप्रेक्षा

गतकाल अमित अतीत सूक्ष्म निगोद पर्यय महिं कियौ।
तहँ ज्ञान लब्ध्यक्षर असंयम भाग अंगुल तन लयौ।।
धर धर दशाष्टम भाग इक उश्वास के आयू सही।
कछु लब्धि वश जिय सैल सम क्रम सेय त्रस पदवी लही।।19।।
पथ रत्न पावन तेम दुर्लभ पद पंचेंद्रिय आवनों।
सम काकताली न्याय के मानुष गती महिं आवनों।।
तहँ क्षेत्र आरज सुकुल दीरघ आयु अगद शरीरहीं।
इंद्रीन पूरणता सघनता सुमति संगति शुभ सही।।20।।
ए इकिक से इक अति हि दुर्लभ सो भि लह बहु बारिया।
सुर असुर नर खग भोग भूमिज आदि पद वर धारिया।।
मुनि लिंग भी सम्यक्त्व बिन धर चरम ग्रीवक तक गयौ।
पर सुदृग बोधाचरण लह नहिं आत्मकार्य हिं समरयौ।।21।।

धर्म अनुप्रेक्षा

भव भ्रमत भरत अशर्म अमित जियान कौ हित ठान कैं।
जो पर्म शर्मद थान महिं लै धरहि विधि मद भान कैं।।
सो धर्म वस्तु स्वरूप अस वृष रूप दश विध मानिये।
त्रय रत्न आत्मक भाव पुन कारुण्यता युत जानिये।।22।।
या विध दुदश वर भावना ये वर्धिनी वैराग की।
भावहु सदा जिम स्व पद पावहु शांत कर दव राग की।।
जिन चिंतवन ही करत इंद्रिय विषय जाँह पलाय कैं।
तप शीत भूख तृषादि गद दुर जाँह संग विहाय कैं।।23।।
सुर नर असुर खग ईश जिन निश दीश सेवा पद तनी।

युत भक्ति नमन मशीश ठानत ते त्रिजग जन शिरमनी।।
श्री तीर्थपति जिन चिंत के ह्वै विरत भव तन भोग से।
व्रत गहहिं तब शिव लहहिं विधि वन दहहिं शित पद योग से।।25।।

(दोहा)

त्रिकरण शुचि कर भावहीं, सततहिं जो भवि लोय।
वर्णि दौल सो लघु महीं, तरहिं विकट भव तोय।।1।।
शशि कुल गिरि पद नियत वृष, ज्येष्ठ अधिक अलितास।
प्रतिपद ज्येष्ठा रिख महीं, पूरण किय सुख राश।।2।।
शब्द छंद अरु अर्थ मँह, मूल सुधी जन पेख।
हास्य भाव तज शुद्ध कर, पढ़ियौ इनहिं विशेष।।3।।

14

ग्यारह प्रतिमाएँ

(दोहा)

प्रणमि पंच परमेष्ठि पद, जिन आगम अनुसार।
श्रावक प्रतिमा एकदश, कहुँ भविजन हितकार।।1।।

(सवैया इकतीसा)

श्रद्धा कर व्रत पालै सामायिक दोष टालै,
पोसौ मांड सचित्त कौं त्याग लौं घटायके।
रात्रि भुक्ति परिहरै ब्रह्मचर्य नित धरै,
आरंभ कौ त्याग करै मन वच काय के।।
परिग्रह काज टारै अघ-अनुमत छारै,
स्वनिमित्त-कृत त्यागै अनशन बनायके।
सब एकादश येह प्रतिमा जु शर्म गेह,
धारै देशव्रती उर हरष बढ़ायके।।2।।

1. दर्शन प्रतिमा

(चौपाई)

अष्ट मूलगुण संग्रह करै, विषम अभक्ष सबै परिहरै।
श्रुत अष्टांग शुद्ध सम्यक्त्व, धरहि प्रतिज्ञा दरशन रक्त।।3।।

2. व्रत प्रतिमा

(चौपाई)

अणुव्रत पन अतिचार विहीन, धारहि जो पुन गुणव्रत तीन।
शिक्षाव्रत चतु संयुत सोय, व्रत प्रतिमा धर श्रावक होय।।4।।

3. सामायिक प्रतिमा

(गीतिका)

सब जियन में समभाव धर शुभ भावना संयम मही,
दुरध्यान आरत रौद्र तजकर त्रिविध काल प्रमाण ही।
परमेष्ठि पन जिन वचन जिन वृष बिम्ब-जिन जिन-गृह तनी,

वन्दन त्रिकाल करह सुजानहु भव्य सामायिक धनी।।5।।

4. प्रोषध प्रतिमा

(पद्धरि)

वर मध्यम जघन त्रिविध धरेय, प्रोषध विधि युत निज बल प्रमेय।
प्रतिमा सु चार पर्वी मँझार, जानहु सो प्रोषध नियम धार।।6।।

5. सचित्त-त्याग प्रतिमा

(चौपाई)

जो परिहरै हरीं सब चीज, पत्र प्रवाल कंद फल बीज।
अरु अप्रासुक जल भी सोय, सचित-त्याग प्रतिमा धर होय।।7।।

6. रात्रिभुक्ति-त्याग प्रतिमा

(अडिल्ल)

मन वच तन कृत कारित अनुमोदै सही,
नवविध मैथुन दिवस माँहिं जो वर्जही।
अरु चतुविध आहार निशा माहीं तजै,
रात्रिभुक्ति परित्याग प्रतिज्ञा सो सजै।।8।।

7. ब्रह्मचर्य प्रतिमा

(चौपाई)

पूर्व उक्त मैथुन नव भेद, सर्व प्रकार तजै निरखेद।
स्त्रि-कथादिक भी परिहरै, ब्रह्मचर्य प्रतिमा सो धरै।।9।।

8. आरम्भ-त्याग प्रतिमा

(चौपाई)

जो कछु अल्प-बहुत अघ काज, गृह संबंधी सो सब त्याज।
निरारम्भ ह्वै वृष-रत रहै, सो जिय अष्टमि प्रतिमा वहै।।10।।

9. परिग्रह-त्याग प्रतिमा

(चौपाई)

वस्त्र मात्र रख परिग्रह अन्य, त्याग करै जो व्रत सम्पन्न।
ता में पुन मूर्छा परिहरै, नवमी प्रतिमा सो भवि धरै।।11।।

10. अनुमति-त्याग प्रतिमा

(चौपाई)

जो पुमान अघमय उपदेश, देय नहीं पर कों लवलेश।
अरु तसु अनुमोदन भी तजै, सो ही दशमी प्रतिमा भजै।।12।।

11. उद्दिष्ट-त्याग प्रतिमा

(चौपाई)

ग्यारम थान भेद हैं दोय, इक क्षुल्लक इक ऐलक सोय।
खंड वस्त्र धर प्रथम सुजान, युत कौपीनहिं दुतिय पिछान।।13।।
ये गृह त्याग मुनिन ढिंग रहैं, वा मठ मन्दिर में निवसहैं।
उतरत दंड उचित आहार, करहिं शुद्ध अंत्राय निवार।।14।।

(दोहा)

हम सब प्रतिमा एकदश, दौल देशव्रत थान।
ग्रहै अनुक्रम मूल सह, पालै भवि सुख दान।।15।।

15

व्रत-नियम पोथी

(दोहा)

प्रणमि पंच परमेष्ठि जिन, चैत्य-सद्म वृष वानि।
बाँध छंद निज नियम के, लिखूँ स्व हित पहिचानि।।1।।

(चौपाई)

अशन करूँ जिन चैत्य निहार, मूल अष्ट सब अभख निवार।
व्यसन टाल बुधि गत दृग दोष, हन सुमरों वसु अंग अदोष।।2।।
अणुव्रत पन पन पन अतिचार, विगत स्व चित गत पालों सार।
उपधि पंचदश गज पट जान, चरु दुकटासन वाटकि मान।।3।।
पेटी शास्त्रनि की इक सही, कारटादि चतु आना तहीं।
यह रख अन्य ग्रहण नहिं चहूँ, जिहिं खित माँहिं वरन सो कहूँ।।4।।

(अडिल्ल)

कुण्डलपुर सैं क्षेत्र पपौरा जाय कैं, लौट ललितपुर मार्ग सिरोंने आयकैं।
क्षेत्र वंदि थूबौन वाट बीना घरै, ग्राम टड़ा हो कुण्डलाद्रि मधि व्योहरैं।।5।।

(चौपाई)

इन मग बाह्य क्षेत्र में कहीं, बिन पर-प्रेरित जैहों नहीं।
देश-सीम नित प्रति चित धरौं, भुक्ति कथा कहुँ अब जिम भरौं।।6।।
गेहूँ तन्दुल मूँग विधान, जीरौ द्राक्ष लवँग अजवान।
मैंथि दुसैमा उर अमकरी, घृत सेंधव जल पनदश खरी।।7।।

(दोहा)

इन माँहि सुद्ध अजीव धुत, तप्त पंच जन थान।
निरखि क्षुधामय यूत जल जैनिहि पान।। 8 ।।
दिन पय छान तपाय नव, जामन दिय वसु जाम।
प्रथमहिं मक्खन काढकैं, तप्त तुरत कर काम।।9।।

(चौपाई)

जामैं छाँछ नीर जल जाय, छान धरै सो जतन कराय।

तिहिं मरयाद फिरन रँग मही, जो सछाँछ ह्वै तसु दिन वही।।10।।

पीसै खनै दलै दिवसेह, आटा तन्दुल दाल त्रि एह।

जैनिहि चाकी कर अति साफ, शुचि तन आटौ पीसै आप।।11।।

सो जो यतन थकी राखेव, तौ दिन सप्त पंच त्रय सेब।

रस दिन एक-एक ही पाम, न सबल गात लवन मो काम।।12।।

(दोहा)

कुगुरू कुदेव कुधर्म रुचि, व्यसनि चिलमयी टारि।

औ पनमास गरभघृती, त्रिय बिन अन नर-नारि।।13।।

(चौपाई)

सित पट धौत नहुन कर वारि, लाख चूड़ि कर मुदरी टारि।

थान रसोई पट क्षत तान, करै अतरु वेलन द्युत थान।।14।।

सो मैं लहुँ लख दूषण बिन ही, लहुँ न लवन घृत रवि बुध महीं।

मास त्रि बिन दुति वार अरवार, असृत पान करूँ न लगार।।15।।

सबल खार इक रस जल वृत्त, खनय पटेंदु शरद तक मित्त।

चरु विलियास निकट पट मुक्त, तजे बुद्धि मम धर उपभुक्त।।16।।

कागज कलम रँगादि सपात, रै हैं कछु मम संग विख्यात।

अनरथ दंड स्व चितगत भान, शिक्षा व्रतहिं धरौं उर थान।।17।।

काल त्रि सामायिक लघु करौं, शक्ति स्वमित प्रोषध व्रत धरौं।

षोडस पहर बाह्य पुर कहीं, बिन हित शौच जानकौं नहीं।।18।।

सचित त्याग कर प्रासुक वार, वरतों सब ही कार्य मँझार।

तज निशि भुक्त वचन मन काय, कृत कारित अनुमत से भाय।।19।।

(चाल)

व्रत ब्रह्मचर्य सुखदाई, हनके त्रिकरण दुचिताई।

ऊनोदर बिन सह वाडी, पालौं चित वृत्तहिं ताडी।।20।।

आरम्भ अल्प बहु दोई, तज वरतौं त्रस वध खोई।

पर-प्रेरित अचित सवारी, अरु रुगि तन जन बिन सारी।।21।।

परिहान पग न गत ठानी, विचरौं कृत दिग्व्रत थानी।

कोइ लैन बाह्य जन आई, जैहूँ हेतू वृष चाई।।22।।

मग में जो गाम लहाऊँ, तहँ दिन चतुताहि रहाऊँ।
अरु जो रुग वशि हो जैहौं, तौ बिन मित काल रहैंहौं।।23।।
प्राविड बिन इक पुर माँहीं, रहुँ मास दुसे बहु नाहीं।
तन औषध निंद्य सचित्ती, मरदौं न हरण रुग हित्ती।।24।।
लघु मोल जलादि बिहाई, याचूँ न पदार्थ कदाई।
अर्थादि बिना व्रत-हीनों, न कहूँ विकथा वच दीनों।।25।।
निशि जिनगृह तज अनथानी, बोलूँ बिन कार्य न वानी।
विधि युक्त बुलाये धामी, हन रहस असन भुगतामी।।26।।
बिन बुधिगत दूषण लागै, वश मो न कछू तिहिं जागै।
जिन सिद्ध सूरि उवझाई, सब साधुन कौं सिर नाई।।27।।
यह अरजि करौं कर जोरी, सुनियो करूणानिधि मोरी।
मैं भ्रमि चिर भव वन माँहीं, भुगते दुख घोर सदाहीं 28।।
कबहूँ कछु सुकृत करिकैं, लिय शर्म अमर पद घरकैं।
जिन लिंग द्रव्य कहुँ धारी, लिय ग्रैवेयक अवतारी।।29।।
कभुँ जिन वृष भंज कथाई, भोगे दुख श्वाभ्र अमाई।
झलकैं तुम ज्ञान मँझारी, सो सो सब ही त्रिपुरारी।।30।।
अब या भव औमर पाई, पायो कछु व्रत सुखदाई।
लघु-लघू दोष जो कोई, लागे तुम जानत सोई।।31।।
ते होय मृषा सब स्वामी, दुग युक्त फलौ मम कामी।
व्रत भाव नाम धर होकैं, विचरौं निज आतम जो कैं।।32।।

(दोहा)

अन्य चाह कछु नाहिं मम, व्रत अदोष त्री पाल।
अन्त मरण सल्लेखना, हूजो हे जगपाल।।33।।
अवधी पति जीवन प्रती, कहत वचन मद टार।
नियम अधिक कम देख मम, करौ न स्वचित विचार।।34।।
पूरव कृत कछु नियम मम, कछु पदार्थ रुग गात।
जनक जानकिय त्याग कछु, करन करण मद घात।।35।।
जनपद बागड़ वेगपुर, रह्यो मास इक आय।

निमित स्व देशन वृद्धि वृष, आकर तहँ चित लाय।।36।।

विधु कुलगिरि हरि नियत वृष, पौष धवल दिनअन्त।

लिखे छंद निज दौल यह, करन कण्ठ हित सन्त।।37।।

*****